अग्निशिखा
अखिल भारतीय पत्रिका
अगस्त २०२३

# अवतार

# विषय-सूची

## अवतार

(श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द के वचन)


| | | |
|---|---|---|
| सन्देश/सम्पादकीय | | ३ |
| अवतारवाद का सिद्धान्त | | ५ |
| अवतार का कार्य | | ९ |
| अवतार तथा विभूतियाँ | | १८ |
| पुरोधा : दैनन्दिनी | | ३० |
| एक नयी जगत्-व्यवस्था | आयंगार कृत 'ऑन द मदर' पुस्तक से | ३३ |
| एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार | 'श्रीमातृवाणी' से | ३५ |
| 'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : मृत्यु के बाद | नवजातजी | ३७ |
| प्रभु जब उतरते हैं | स्व. श्री रवीन्द्रजी | ४० |
| यादों में ही सही, दिन हमारा है | हेलेन केलर | ४३ |
| भगवान् से मिलने का कार्यक्रम कभी बनाया? | वन्दना | ४७ |



**अग्निशिखा**

**श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका**

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तें स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

**सम्पादिका : वन्दना**

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

# सन्देश

*क्या मैं परमेश्वर को भी कभी देख सकूँगी?*

एक दिन शायद तुम परमेश्वर को भी देखोगी, लेकिन उनका कोई निश्चित अमुक आकार नहीं है और 'वे' सब आकारों से परे भी हैं।

इसीलिए वे धरती पर अपने अवतार भेजते हैं ताकि मनुष्य अधिक आसानी से उनसे मिल सकें, उन्हें देख सकें, उनके सम्पर्क में आ सकें। लेकिन वे सदा हमारे सबके साथ हैं और हम सब सतत उनके सम्पर्क में रह सकते हैं यदि हम उनके लिए आवश्यक काम करें, और वह है बस **उनसे प्रेम करें**।

चिरन्तर प्रेम में सदा तुम्हारे साथ।

'सफ़ेद गुलाब' से २८ फ़रवरी १९६३

*सम्पादकीय :* अवतारवाद का सिद्धान्त भारतीय आध्यात्मिक विचार की एक बहुत महत्त्वपूर्ण धारणा है और स्वयं श्रीअरविन्द के योग में इसकी केन्द्रीय भूमिका है। लेकिन जगत् में यह बहुत चर्चा का विषय नहीं है।

इस अंक में भगवान् के अवतार-रूप विषय पर कुछ रोचक और कुतूहलपूर्ण सामग्री का चयन किया गया है।

*भागवत चेतना और सत्ता जब शरीर के द्वारा अभिव्यक्त होती हैं तो उसे ही अवतार कहते हैं। किसी भी स्तर पर ऐसा होना सम्भव है।*

जो भी लायेगा उतार कर दिव्य लोक को भू पर,
उसे प्रथम भू के कर्दम में स्वयं उतरना होगा।
ढोना होगा गहन भार वसुधा की हीन प्रकृति का,
काँटों से आकीर्ण पन्थ से स्वयं गुज़रना होगा।

स्वयं दमित कर निज विभुत्व को मैं नीचे आया हूँ
अधम भूमि पर, मैं जिसकी धूसर रज-बीज पड़ा हूँ।
अज्ञानी, श्रमनिरत मनुज की दुर्बलता अपना कर
जन्म-मृत्यु, इन दो द्वारों के अन्तर्मध्य खड़ा हूँ।

बहुत दिनों से खोद रहा हूँ, गूढ़ दीर्घ परिखा को
बिना किये चिन्ता कर्दम की, ह्रास-त्रास की, मल की।
बहे सुनहरी नदी खेय में गीत स्वर्ग का गाकर
और बसे उसमें अभंग मधुज्वाला अमर अनल की।

CWSA खण्ड २, पृ. ५३४

# अवतारवाद का सिद्धान्त

**मानवता में देवत्व का प्रकटन**

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही बड़े दृढ़ विश्वास के साथ यह मान्यता चली आयी है कि भगवान् वास्तव में अवतार लिया करते हैं, अरूप से रूप में अवतरित हुआ करते हैं, मनुष्यरूप में मनुष्यों के सामने प्रकट हुआ करते हैं। पश्चिमी देशों में यह विश्वास लोगों के मन पर कभी ठोस रूप में जमा ही नहीं, क्योंकि लौकिक ईसाई-धर्म में इस भाव को एक ऐसे धार्मिक मत-विशेष के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसका युक्ति, सर्वसाधारण चेतना और जीवन-व्यवहार से मानों कोई मौलिक सम्बन्ध ही न हो। लेकिन भारतवर्ष में वेदान्त की शिक्षा के स्वाभाविक परिणामस्वरूप यह विश्वास हमेशा बढ़ता और जमता गया और इस देश के लोगों की चेतना में ही जड़ पकड़ गया है। यह सारा चराचर जगत् भगवान् की ही अभिव्यक्ति है, कारण एकमात्र भगवान् ही सत् हैं, बाक़ी सब उन्हीं एकमात्र सत् का सत् या असत् रूप है। इसलिए प्रत्येक सचेतन सत्ता किसी-न-किसी अंश में, किसी-न-किसी विधि से उसी एक अनन्त का सान्त दीखने वाले इस नामरूपात्मक जगत् में अवतरण-मात्र है। परन्तु यह मानों परदे के पीछे अभिव्यक्ति है; और, भगवान् का जो परम भाव है तथा सान्त रूप में सत्ता की यह जो पूर्णतः अथवा अंशतः अविद्या में छिपी चेतना है, इन दोनों के बीच में चेतना का चढ़ता-उतरता हुआ क्रम लगा है। शरीर में रहने वाली सचेतन आत्मा, जिसे देही कहते हैं, भगवदग्नि की चिनगारी है और मनुष्य के अन्दर रहने वाली यह आत्मा जैसे-जैसे अपने बारे में अज्ञान से बाहर निकल कर आत्म-स्वरूप में विकसित होने लगती है वैसे-वैसे वह आत्म-ज्ञान में बढ़ने लगती है। भगवान् भी इस विश्व-जीवन के नानाविध रूपों में अपने-आपको ढालते हुए, सामान्यतः, इसकी शक्तियों के फलने-फूलने में, इसके ज्ञान, प्रेम, आनन्द और विभूति की तेजस्विता और विपुलता में, अपनी दिव्यता की कलाओं और रूपों में आविर्भूत हुआ करते हैं। परन्तु जब भागवत चेतना और शक्ति मनुष्य के रूप तथा कर्म की मानव-प्रणाली को अपना लेती है, और इस पर केवल शक्ति और विपुलता द्वारा अथवा अपनी कलाओं और बाह्य रूपों द्वारा ही नहीं, बल्कि अपने शाश्वत ज्ञान

के साथ अधिकार कर लेती है, जब वह अजन्मा अपने-आपको जानते हुए मानव मन-प्राण-शरीर धारण कर, मानव-जन्म का जामा पहन कर कर्म करता है तब वह देश-काल के अन्दर भगवान् के प्रकट होने की पराकाष्ठा है : वही भगवान् का पूर्ण और चिन्मय अवतरण है, वही है अवतार। CWSA खण्ड १९, पृ. १३-१४

## सभी अवतारों का मूल स्रोत

आज मुझसे अवतार के बारे में बोलने के लिए कहा गया है।

पहली बात तो मुझे यह कहनी है कि श्रीअरविन्द ने इस विषय पर लिखा है और जिसने मुझसे यह प्रश्न किया है वह श्रीअरविन्द का लिखा हुआ पढ़ना शुरू करे तो अच्छा होगा।

उसके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि उसे पढ़ना ही तुम्हारे लिए अधिक अच्छा होगा।

लेकिन मैं तुम्हें एक बहुत पुरानी परम्परा, आध्यात्मिक और गुह्य परम्पराओं की दोनों ज्ञात धाराओं, अर्थात्, वैदिक और कैल्डियन धाराओं से भी पुरानी परम्पराओं के बारे में बताऊँगी; ऐसी परम्परा जो लगता है कि इन दो ज्ञात धाराओं के मूल में रही होगी। इसमें कहा जाता है कि जब विरोधी शक्तियों के द्वारा—जिन्हें हिन्दू-परम्परा में असुर कहते हैं—यह संसार 'ज्योति' और जन्मजात 'चेतना' के अपने विधान के अनुसार प्रगति करने के बजाय तम, निश्चेतना और अविद्या, जिनसे हम परिचित हैं, में डूब गया, तब 'सृजनकारी शक्ति' ने 'परम आदिमूल' से प्रार्थना की, इस पथभ्रष्ट विश्व को बचाने के लिए विशेष हस्तक्षेप की याचना की; और इस प्रार्थना के उत्तर में 'परम मूल स्रोत' से प्रकट हुई प्रेम और चेतना से निर्मित एक विशेष 'सत्ता' जिसने सीधे निबिड़तम निश्चेतन जड़ में डुबकी लगायी ताकि वहाँ आदि 'चेतना' और 'प्रेम' के प्रति उसे जगाने का काम शुरू हो सके।

पुरानी कथाओं में इस 'पुरुष' का वर्णन इस प्रकार आता है कि एक बहुत अँधेरी गुफा के तल में यह गहरी नींद में सोया हुआ है और वहाँ इसकी नींद में ही इसमें से प्रकाश की तेज़ रंगीन किरणें फूटीं जो धीरे-धीरे निश्चेतन में फैल गयीं और निश्चेतन के सब तत्त्वों में जा बसीं, ताकि वहाँ 'जागृति' का काम शुरू कर सकें।

यदि इस निश्चेतन में कोई सचेतन भाव से प्रवेश करे तो वह अब भी वहाँ इस अलौकिक 'सत्ता' को देख सकेगा जो अभी तक गहरी नींद में सोयी हुई है, निस्सरण का अपना कार्य कर रही है, अपनी 'ज्योति' फैला रही है; और वह उस समय तक यह करती रहेगी जब तक 'निश्चेतन' अब और निश्चेतन नहीं बना रहेगा, जब तक दुनिया से अन्धकार मिट नहीं जाता—और सारी सृष्टि 'अतिमानसिक चेतना' के प्रति सजग नहीं हो जाती।

और विलक्षण बात यह है कि यह अद्‌भुत 'सत्ता' उस 'सत्ता' के साथ मिलती-जुलती है जिसे मैंने एक दिन अपने अन्तर्दर्शन में देखा था, वह 'सत्ता' जो दूसरे छोर पर, साकार और निराकार की सीमा पर स्थित है। लेकिन वह सुनहली अरुण-प्रभा-मण्डित थी जब कि यह अपनी नींद में हीरे-सी चमकती शुभ्रता लिये थी जिससे दूधिया किरणें निकल रही थीं।

और वास्तव में, सभी अवतारों का मूल यही है। कहना चाहिये कि यह पहला वैश्व अवतार है जिसने धीरे-धीरे, उत्तरोत्तर अधिक सचेतन शरीर धारण किये और अन्त में उन परिचित-सी 'सत्ताओं' की पंक्ति में आविर्भूत हुआ जो विश्व को तैयार करने के काम को पूरा करने के लिए *सीधी* 'परम' के यहाँ से अवतरित हुई हैं, ताकि विश्व निरन्तर प्रगति के द्वारा, अतिमानसिक 'ज्योति' को उसकी सम्पूर्णता में ग्रहण करने और अभिव्यक्त करने के लिए तैयार हो सके।

हर देश में, हर परम्परा में, यह घटना एक विशेष तरीक़े से, विभिन्न सीमाओं के अन्दर, विभिन्न विवरणों के साथ, अमुक विशिष्टताओं के साथ प्रस्तुत की गयी है, लेकिन सच पूछो तो इन कथाओं का मूल एक ही है और कहा जा सकता है कि वह बीच की सब अवस्थाओं से गुज़रे बिना अन्धतम जड़ में, 'परम' का सीधा, सचेतन हस्तक्षेप है जिससे कि यह जड़-जगत् भागवत शक्तियों को धारण करने के लिए जाग उठे।

इन अवतारों को अलग करने वाले अन्तराल उत्तरोत्तर छोटे होते दीखते हैं, मानों जैसे-जैसे जड़ अधिकाधिक तैयार होता गया वैसे-वैसे ही क्रिया भी ज़ोर पकड़ती और अधिक तेज़ होती चली गयी, साथ ही अधिकाधिक सचेतन और अधिकाधिक प्रभावशाली और निर्णायक भी।

और यह अपने-आपको तब तक बहुगुणित करती और तीव्र बनाती रहेगी जब तक कि सकल ब्रह्माण्ड 'परम' का पूर्ण अवतार नहीं बन जाता।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. ३६३-६४

वह निरपेक्ष, वह पूर्णतत्त्व, वह अविकारी प्रभु,
वह परमैकम् है जो हमारे अन्दर हमारी गुह्य सत्ता है,
उसने हमारी अपूर्णता के छद्मवेष को धारण किया है,
उसने इस मांसल देह को अपना निजी गेह बनाया है,
अपने प्रतिबिम्ब को मानवीय साँचे में ढाल दिया है
जिससे उसके दिव्य माप में हम उन्नत हो सकें;
तब विश्वकर्मा हमें फिर से एक दिव्यता के आकार में
ढाल देगा, और आरोपित कर देगा देवत्व की
एक योजना इस नश्वर मानव-काया पर,
इस तरह हमारे नश्वर मनों को अपनी अमरता की ओर उठा कर,
इस क्षण को शाश्वतता का संस्पर्श दे देगा।
यह रूपान्तर पृथ्वी को स्वर्ग से मिलने वाला एक पावना है :
एक आपसी ऋण ने मानव को पुरुषोत्तम से बाँध दिया है :
हमें उसकी प्रकृति अपनानी है जैसे उसने हमारी धारण की है;
हम उसके बालक हैं और हमें उसके समान बनना है :
उसके मानवीय अंश, हमें दिव्य बनकर विकसित होना है।
हमारा जीवन एक विरोधाभास है, जिसकी कुञ्जी परमेश्वर हैं।
*'सावित्री'*, पृ. ६७

# अवतार का कार्य

## अगली क्रमविकासात्मक सीढ़ी को जोड़ना

चेतना एक सोपान की तरह है : हर बड़े युग में एक महान् व्यक्ति हुआ जो सीढ़ी में एक डण्डा और बढ़ा सकता था और इतनी ऊँचाई पर पहुँच सकता था जहाँ तक साधारण चेतना पहले कभी नहीं पहुँची। एक ऊँचे स्तर को प्राप्त करके भौतिक चेतना की पहुँच से एकदम बाहर जाना सम्भव है; लेकिन तब सीढ़ी बनी नहीं रहती, जब कि महान् युगों की महान् उपलब्धियाँ वे हैं जिन्होंने भौतिक से नाता तोड़े बिना सोपान पर एक और सीढ़ी लगायी है। 'उच्चतम' तक पहुँचने की क्षमता और साथ-ही-साथ शिखर का निचली सतह के साथ सम्बन्ध जोड़ना महान् उपलब्धि है, न कि अलग-अलग स्तरों, लोकों के सम्बन्ध काट कर बीच-बीच में ख़ालीपन को आने देना। ऊपर और नीचे जाना, उच्चतम का निम्नतम से नाता जोड़ना ही सिद्धि या उपलब्धि का परम रहस्य है, और यही अवतार का कार्य है। जब-जब अवतार सोपान में एक नयी सीढ़ी जोड़ता है तब-तब धरती पर एक नयी सृष्टि जन्म लेती है...। अब जो सीढ़ी जोड़ी जा रही है उसे श्रीअरविन्द ने 'अतिमानस' का नाम दिया है; उसके परिणामस्वरूप, चेतना अतिमानसिक लोक में प्रवेश पा सकेगी और फिर भी अपना व्यक्तिगत रूप रख सकेगी, यानी अपनी व्यक्तिभावापन्नता, और फिर यहाँ लौट कर एक नयी सृष्टि स्थापित करेगी, निश्चय ही यह अन्तिम सीढ़ी नहीं है, इसके ऊपर सत्ता की और भी श्रेणियाँ हैं; लेकिन अभी हम अतिमानस को नीचे लाने के प्रयास में लगे हैं ताकि संसार का पुनर्गठन कर सकें, ताकि जगत् को सच्ची दिव्य व्यवस्था में वापस ला सकें। यह तत्त्वतः व्यवस्था की एक सृष्टि होगी, हर चीज़ अपने सच्चे स्थान पर होगी; इस समय जो प्रमुख शक्ति क्रियाशील है वह है महासरस्वती—पूर्ण व्यवस्था की देवी।

अविच्छिन्नता प्राप्त करने का कार्य, जो ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने की क्षमता देता है और जो ऊपर है उसे नीचे भौतिक में लाता है, चेतना के अन्दर किया जाता है। अवतार यह काम करने के लिए आता है। अगर उसे कारागार में बन्द कर दिया जाये, न वह किसी से मिले-जुले और न कहीं हिले-डुले, फिर भी वह कार्य करता रहेगा, क्योंकि यह चेतना के

अन्दर का काम है, अतिमानस और भौतिक सत्ता को जोड़ने का काम है। उसे पहचाने जाने की ज़रूरत नहीं होती, यह सचेतन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उसे किसी बाहरी शक्ति की ज़रूरत नहीं होती। लेकिन, एक बार सम्बन्ध स्थापित हो जाये तो बाहरी जगत् पर उसका प्रभाव नव सर्जन के रूप में अवश्य होगा जो एक आदर्श नगरी से लेकर पूर्ण जगत् तक पहुँचेगा।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ३, पृ. १८९-९०

## मनुष्य का देवत्व में उठना

अगर मानवता में उतर कर भगवान् मनुष्य को देवत्व में ऊपर नहीं उठायें तो धर्म के लिए तो भगवान् का अवतार लेना निरर्थक-सी घटना प्रतीत होगी, क्योंकि धर्म, न्याय और सदाचार की रक्षा का कार्य तो भगवान् की सर्वसमर्थता अपने सामान्य साधनों के द्वारा, यानी महापुरुषों और महान् आन्दोलनों के द्वारा तथा ऋषियों, राजाओं और धार्मिक गुरुओं के द्वारा हमेशा कर ही सकती है, उसके लिए सचमुच अवतार के प्रकट होने की कोई आवश्यकता ही नहीं। अवतार का आगमन मानव-प्रकृति में भागवत प्रकृति को प्रकट करने के लिए होता है—ईसा, कृष्ण और बुद्ध इसी रहस्य का उद्घाटन करने के लिए धरा पर उतरे कि मानव-प्रकृति अपने सिद्धान्त, विचार, कर्म और सत्ता को ईसा, कृष्ण और बुद्ध के साँचे में ढाल कर स्वयं भागवत प्रकृति में रूपान्तरित हो जाये। अवतार जिस धर्म को प्रतिष्ठित करते हैं उसका मुख्य कारण भी यही होता है; ईसा, बुद्ध तथा कृष्ण इस धर्म के मुख्य द्वार का केन्द्र बन कर खड़े हुए और अपने अन्दर से ही होकर उन्होंने उस मार्ग का निर्माण किया जिसका अनुसरण करना मनुष्यों का धर्म होता है। यही कारण है कि प्रत्येक अवतार मनुष्यों के सम्मुख अपना ही उदाहरण रखते हैं और अपने-आपको ही एकमात्र मार्ग और प्रवेश-द्वार घोषित करते हैं। अवतार मानव से यह कहते हैं कि मैं ईश्वर का दूत मानवता को ही लेकर उतरा हूँ, कि मैं जो मानव-पुत्र हूँ और जिस ऊर्ध्वस्थित पिता से मैं अवतरित हुआ हूँ, हम दोनों एक ही हैं—मनुष्य-शरीर में जो श्रीकृष्ण हैं—मानुषीं तनुमाश्रितम्—और परमेश्वर तथा सभी प्राणियों के सुहृत्-मित्र जो श्रीकृष्ण हैं, ये दोनों उन्हीं भगवान्

पुरुषोत्तम के ही प्रकाश हैं, वहाँ ऊपर वे अपनी ही सत्ता में प्रकट रहते हैं, और यहाँ धरती पर मानव-आकार में प्रकट होते हैं।
CWSA खण्ड १९, पृ. १४८-४९

**अवतार के दो रूप**

अवतार के हमेशा दो रूप होते हैं—भागवत रूप और मानव-रूप; भगवान् मानव-प्रकृति को अपना लेते हैं, उसे उसकी सभी बाह्य सीमाओं के साथ भागवत चेतना और भागवत शक्ति की परिस्थिति, साधन और यन्त्र तथा दिव्य जन्म और दिव्य कर्म का एक पात्र बना लेते हैं और यही होना चाहिये; वरना अवतार के अवतरण का उद्देश्य ही पूर्ण नहीं हो सकता। अवतरण का उद्देश्य यही दिखलाना है कि मानव-जन्म मनुष्य की सभी सीमाओं के रहते हुए भी दिव्य जन्म और दिव्य कर्म का साधन और यन्त्र बनाया जा सकता है, अभिव्यक्त दिव्य चेतना के साथ मानव-चेतना का मेल बैठाया जा सकता है, उसका धर्मान्तर करके उसे दिव्य चेतना का पात्र बनाया सकता है, और उसके साँचे को रूपान्तरित करके उसके प्रकाश, प्रेम, सामर्थ्य और पवित्रता की शक्तियों को ऊपर उठा कर उसे दिव्य चेतना के अधिक समीप लाया जा सकता है। अवतार यह भी दिखलाते हैं कि यह कैसे किया जा सकता है। अगर अवतार अद्‌भुत चमत्कारों के द्वारा ही काम करें, तो इससे अवतरण का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। असाधारण अथवा अद्‌भुत चमत्कारूप अवतार के होने का कुछ मतलब ही नहीं रहता। यह भी ज़रूरी नहीं है कि अवतार असाधारण शक्तियों का प्रयोग करे ही नहीं, जैसे कि ईसा के रोगियों को ठीक कर देने वाले तथाकथित चमत्कार; क्योंकि असाधारण शक्तियों का प्रयोग मानव-प्रकृति की सम्भावना के बाहर नहीं है। परन्तु इस प्रकार की कोई शक्ति न हो फिर भी अवतार में कोई कमी नहीं आती, न यह कोई मौलिक बात है। यदि अवतार का जीवन असाधारण आतिशबाज़ी का खेल हो तो इससे भी काम न चलेगा। अवतार ऐन्द्रजालिक जादूगर बन कर नहीं आते, उलटे मनुष्यजाति के भागवत नेता और भागवत मनुष्य के एक उदाहरण बन कर आते हैं। मनुष्योचित् शोक और भौतिक दुःख भी उन्हें झेलने पड़ते हैं और उनसे काम लेना पड़ता है, ताकि वे यह दिखला सकें कि किस

प्रकार इस शोक और दुःख को आत्मोद्धार का साधन बनाया जा सकता है। ईसा ने दुःख उठा कर यही दिखाया। दूसरी बात उन्हें यह दिखलानी होती है कि मानव-प्रकृति में अवतरित भागवत आत्मा इस शोक और दुःख को स्वीकार करके उसी प्रकृति में उसे किस प्रकार जीत सकती है। बुद्ध ने यही करके दिखलाया था। यदि कोई बुद्धिवादी ईसा के आगे चिल्लाया होता, "तुम यदि ईश्वर के बेटे हो तो उतर आओ इस सूली पर से।" अथवा अपना पाण्डित्य दिखा कर कहता कि अवतार ईश्वर नहीं थे, क्योंकि वे मरे और वह भी भयंकर बीमारी से, तो वह बेचारा जानता ही नहीं कि वह क्या अनाप-शनाप कह रहा है, क्योंकि बात उसके पल्ले एकदम पड़ी ही नहीं। भागवत आनन्द के अवतार से पहले शोक और दुःख को झेलने वाले अवतार की भी आवश्यकता होती है; मनुष्य की सीमा को अपनाने की आवश्यकता होती है, ताकि यह दिखाया जा सके कि इसे किस प्रकार पार किया जा सकता है। और, यह सीमा किस प्रकार या कितनी दूर तक पार की जायेगी, केवल आन्तरिक रूप से पार की जायेगी या बाह्य रूप से भी, यह बात मानवजाति के उत्कर्ष की अवस्था पर निर्भर करती है, यह सीमा किसी अमानव चमत्कार के द्वारा नहीं लाँघी जायेगी।

CWSA खण्ड १९, पृ. १६४-६५

## अवतार का आविर्भाव

जिस संकट की अवस्था में अवतार का आविर्भाव होता है वह भले बाहरी दृष्टि को मात्र घटनाओं और जड़-जगत् के महत् परिवर्तनों का भीषण काल प्रतीत होता हो, परन्तु उसके स्रोत और वास्तविक अर्थ को यदि हम देखें तो पायेंगे कि यह संकट मानव-चेतना में तब आता है जब उसमें कोई महान् परिवर्तन, कोई नवीन विकास होने वाला हो। इस परिवर्तन के लिए किसी दिव्य शक्ति की आवश्यकता होती है; किन्तु शक्ति जिस चेतना में काम करती है उसके बल के अनुसार बदलती रहती है; इसलिए मानव-मन और अन्तरात्मा में भागवत चेतना का आविर्भाव आवश्यक होता है। जहाँ मुख्यतः बौद्धिक और व्यावहारिक परिवर्तन करना हो वहाँ अवतार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती; मानव-चेतना का महान् उत्थान होता है, शक्ति की महान् अभिव्यक्ति होती है जिसके फलस्वरूप सामयिक तौर

पर मनुष्य अपनी साधारण अवस्था से ऊपर उठ जाते हैं और चेतना और शक्ति की यह लहर कुछ असाधारण व्यक्तियों में तरंग-शृंग बन जाती है और इन्हीं असाधारण व्यक्तियों को विभूति कहते हैं; इन विभूतियों का काम सर्वसाधारण मानवजाति के कर्म का नेतृत्व करना है और यह नियत परिवर्तन के लिए पर्याप्त होता है। यूरोपीय पुनर्निर्माण और फ़्रांस की राज्य-क्रान्ति इसी प्रकार के संकट थे; ये महान् आध्यात्मिक घटनाएँ नहीं, बल्कि बौद्धिक और लौकिक परिवर्तन थे। एक में धार्मिक तथा दूसरे में सामाजिक और राजनीतिक भावनाओं, रूपों और प्रेरक भावों का परिवर्तन हुआ और इसके फलस्वरूप जनसाधारण की चेतना में जो परिवर्तन हुआ वह बौद्धिक और गतिशील था, आध्यात्मिक नहीं। परन्तु जब किसी संकट के मूल में कोई आध्यात्मिक बीज या प्रेरणा होती है तब मानव-मन और आत्मा में प्रवर्तक और नेता के रूप में भागवत चेतना का पूर्ण या आंशिक प्रादुर्भाव होता है। यही है अवतार।...

CWSA खण्ड १९, पृ. १६८-६९

## धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करना

अवतार के बारे में *गीता* में जो कहा गया है उसे ठीक तरह समझने के लिए हम धर्म शब्द के पूर्णतम, गभीरतम और व्यापक अर्थ को समझें, धर्म को आन्तरिक और बाहरी विधान मानें जिसके द्वारा भागवत संकल्प और भागवत ज्ञान मानवजाति का आध्यात्मिक विकास सम्पन्न करते हैं और जाति के जीवन में उसकी विशेष परिस्थितियाँ और उनके परिणाम निर्धारित करते हैं। भारतीय धारणा के अनुसार धर्म केवल शुभ, उचित, सदाचार, न्याय और नैतिकता ही नहीं है, बल्कि अन्य प्राणियों के साथ, 'प्रकृति' और 'ईश्वर' के साथ मनुष्यों के जितने भी सम्बन्ध हैं उन सबका कुल योग है, धर्म ही सबको बाँधे रखता है और यही वह दिव्य धर्मतत्त्व है जो जगत् के सभी रूपों और कर्मों के द्वारा, आन्तरिक और बाह्य जीवन के विविध रूपों द्वारा जगत् में जितने परस्पर-सम्बन्ध हैं, उनके द्वारा स्वयं को इस धरती पर सिद्ध करता है। धर्म[१] वह है जिसे हम धारण करते हैं और जो हमारी सभी आन्तरिक और बाह्य क्रियाओं को एक साथ धारण

[१] धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—धारण करना।

किये रहता है। धर्म सचमुच हमारे स्वभाव का वह मूल नियम या विधान है जो गुप्त रूप से हमारे कर्मों को निर्धारित करता है और इसलिए प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक जाति, प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक समूह का अपना-अपना विशेष धर्म होता है। दूसरी बात यह कि हमारे अन्दर जो भागवत प्रकृति है उसे भी तो हमारे अन्दर विकसित होना है, और इस दृष्टि से धर्म आन्तरिक क्रियाओं का वह विधान है जिसके द्वारा भागवत प्रकृति हमारी सत्ता में विकसित होती है। तीसरी दृष्टि से धर्म वह विधान है जिसके द्वारा हम अपने बहिर्मुखी विचार, कर्म और पारस्परिक सम्बन्धों पर नियन्त्रण रखते हैं ताकि भागवत आदर्श की ओर उठने में हमारी और मानवजाति की अधिकाधिक सहायता हो।

धर्म को साधारणतया सनातन और अपरिवर्तनीय कहा जाता है, और इसका मूल तत्त्व और आदर्श है भी ऐसा ही; पर इसके रूप निरन्तर बदला करते हैं, उनका विकास होता रहता है; कारण मनुष्य ने अभी उस आदर्श को प्राप्त नहीं किया है या यह कहें कि उसमें अभी उसकी स्थिति नहीं है; अभी तो इतना ही है कि मनुष्य उसे प्राप्त करने की अधूरी या पूरी इच्छा कर रहा है, उसके ज्ञान और अभ्यास की ओर आगे बढ़ रहा है। और इस विकास में धर्म वही है जिससे भागवत पवित्रता, विशालता, ज्योति, स्वतन्त्रता, शक्ति, बल, आनन्द, प्रेम, शुभ, एकता, सौन्दर्य हमें अधिकाधिक प्राप्त हों। इसके विरुद्ध इसकी परछाईं और इनकार खड़ा है, अर्थात् वह सब जो इसकी बुद्धि का विरोध करता है, जो इसके विधान के साथ सामञ्जस्य में नहीं है, वह जो भागवत सम्पदा के रहस्य को न तो समर्पण करता है न समर्पण करने की इच्छा रखता है, बल्कि जिन बातों को मनुष्य को अपनी प्रगति के मार्ग में पीछे छोड़ देना चाहिये, जैसे अशुचिता, संकीर्णता, बन्धन, अन्धकार, दुर्बलता, नीचता, असामञ्जस्य, दुःख, पार्थक्य, बीभत्सता और असंस्कृति आदि, एक शब्द में, जो कुछ धर्म का विकार और प्रत्याख्यान है उस सबका मोरचा बना कर सामने डट जाता है। यही अधर्म है जो धर्म से लड़ता और उसे जीतना चाहता है, जो उसे पीछे और नीचे की ओर खींचना चाहता है, यही वह उलटी शक्ति है जो अशुभ, अज्ञान और अन्धकार को अन्दर आने देती है। इन दोनों में सतत संग्राम और संघर्ष चल रहा है, कभी इस पक्ष की विजय होती है कभी उस पक्ष की, कभी ऊपर की ओर

ले जाने वाली शक्तियों की जीत होती है तो कभी नीचे की ओर खींचने वाली शक्तियों की। मानव-जीवन और मानव-आत्मा पर अधिकार जमाने के लिए जो संग्राम होता है उसे वेदों ने देवासुर-संग्राम कहा है (देवता अर्थात् प्रकाश और अखण्ड अनन्तता के पुत्र, असुर अर्थात् अन्धकार और भेद की सन्तान); ज़रदुश्त के मत में यही अहुर्मज़्द-अहिर्मन-संग्राम है और बाद के धर्मसम्प्रदायों में इसी को मानव-जीवन और आत्मा पर अधिकार करने के लिए ईश्वर और उनके फ़रिश्तों के साथ शैतान या इबलीस और उनके दानवों का संग्राम कहा गया है।

यही बात अवतार के कर्म का स्वरूप निश्चित और निर्धारित करती है। बौद्ध मत को मानने वाले साधक अपनी मुक्ति के विरोधी तत्त्वों से बचने के लिए धर्म, संघ और बुद्ध, इन तीन शक्तियों की शरण लेते हैं। ईसाई मत में भी ईसाई जीवन-चर्या, गिरजाघर और स्वयं ईसा हैं। अवतार के कार्य में ये तीन बातें अवश्य होती हैं। अवतार एक धर्म बतलाते हैं, आत्म-अनुशासन का एक विधान बतलाते हैं, जिससे मनुष्य निम्नतर जीवन से निकल कर उच्चतर जीवन में पनपे। धर्म में, सदा ही, कर्म के विषय में तथा दूसरे मनुष्य और प्राणियों के साथ साधक का क्या सम्बन्ध होना चाहिये इस विषय में एक विधान भी रहता है, जैसे कि अष्टांग-मार्ग अथवा श्रद्धा, प्रेम और पवित्रता का धर्म अथवा इसी प्रकार का और कोई धर्म जो अवतार के भागवत स्वभाव में प्रकट हुआ हो। इसके बाद, चूँकि मनुष्य की प्रवृत्ति के सामूहिक और वैयक्तिक पहलू होते हैं, जो लोग एक ही मार्ग का अनुसरण करते हैं उनमें स्वभावतः एक आध्यात्मिक साहचर्य और एकता स्थापित हो जाती है, इसलिए अवतार एक संघ की स्थापना करते हैं, संघ अर्थात् उन लोगों का सख्य और एकत्व जो अवतार के व्यक्तित्व और शिक्षा के कारण एक सूत्र में बँध जाते हैं। यही त्रिक "भागवत, भक्त और भगवान्" के रूप में वैष्णव धर्म में भी है। वैष्णव-धर्मसम्मत उपासना और प्रेम का धर्म ही भागवत है, उस धर्म का जिन लोगों में प्रादुर्भाव होता है उन्हीं का संघ-समुदाय भक्त कहाता है, और जिन प्रेमी और प्रेमास्पद की सत्ता और स्वभाव में यह प्रेममय भागवत धर्म प्रतिष्ठित है और जिनमें इसकी पूर्णता होती है वही भगवान् हैं। अवतार त्रिक के इस तृतीय तत्त्व के प्रतीक हैं, वह भागवत व्यक्तित्व, स्वभाव और सत्ता हैं जो इस धर्म और

संघ की आत्मा हैं, और वे इस धर्म और संघ को अपने द्वारा अनुप्राणित करते हैं, उसे सजीव बनाये रखते हैं तथा मनुष्यों को आनन्द और मुक्ति की ओर आकर्षित करते हैं।

CWSA खण्ड १९, पृ. १७१-७३

**मानवता के लिए भागवत उदाहरण**

रही बात भगवान् और मानव की, तो वह भी मानव के द्वारा रची हुई कठिनाई है। मानव में भगवान् विराजमान हैं और अपनी उच्चतम अभीप्साओं और प्रवृत्तियों को सम्पन्न करने और उनके परे चले जाने से मानव भगवान् बन जाता है। यही बात तुम्हारा मूढ़ मित्र 'क्ष' नहीं समझ पाया—कि जब भगवान् धरा पर उतरते हैं तब वे मानवता का सारा बोझ अपने कन्धों पर ले उतरते हैं ताकि धरती को दिखा सकें कि उसके परे कैसे जाया जा सकता है—मानवता को यह दिखाने के लिए कि भगवान् कैसे बना जाता है, वे मानव बन जाते हैं। लेकिन यह ऐसे किसी दुर्बल में नहीं हो सकता जिसके अन्दर कोई भागवत 'उपस्थिति' न हो या जिसके पीछे कोई भागवत 'शक्ति' न हो—उसे शक्तिशाली होना होगा ताकि वह उन सभी में अपनी शक्ति भर सके जो उसे लेने के इच्छुक हों। अतः, उसमें दोहरा तत्त्व होता है—सामने मानव, पीछे भगवान्—और यही चीज़ ऐसी गूढ़ता या अगाधता का भाव देती है जिसकी 'क्ष' शिकायत कर रहा है। अगर तुम केवल मनुष्य को देखो, केवल बाहरी दृष्टि से देखो और उसमें किसी दूसरी चीज़ को देखने के इच्छुक न हो या उसके लिए तैयार नहीं हो, तो तुम बस एक मानव सत्ता को देखोगे—अगर तुम उसमें भगवान् को ढूँढ़ो तो वहाँ तुम्हें भगवान् मिलेंगे।

*

यह बिलकुल नहीं माना जाता है कि अवतार के कार्य करने का तरीक़ा मानवीय न हो—इसके विपरीत, सम्मुख होती है मानव-चेतना जो मानव-तरीक़ों का उपयोग करके मानव-कार्य करती है और भगवान् होते हैं पीछे। अगर अवतार मानव-शरीर धारण न करे तो उसके आने का कोई अर्थ न होगा, किसी के भी लिए वह उपयोगी न होगा। फिर तो वह ऊपर ही रह कर, वहीं बैठे-बैठे सभी कार्य सम्पन्न कर सकता था।

CWSA खण्ड २८, पृ. ४७३

# कृष्ण

*(सॉनेट)*

*अन्ततः मुझे मिला इस मधुर और भीषण*
*जगत् में आत्मा के जन्म का उद्देश्य,*
*मैंने अनुभव किया पृथ्वी का क्षुधित हृदय जो*
*अभीप्सा करता है स्वर्ग के परे कृष्ण के चरण।*

*मैंने देखा है अमर नयनों का सौन्दर्य,*
*मैंने सुना है प्रिय का मादक वंशी-नाद,*
*और जाना है मृत्युरहित आनन्द का आश्चर्य*
*और अपने हृदय में दुःख को, जो है सदा के लिए निर्वाक्।*

*निकट और निकटतर अब संगीत आ रहा,*
*विलक्षण हर्षातिरेक से जीवन थरथरा रहा;*
*सम्पूर्ण प्रकृति है एक विशाल विरमावस्था अनुरक्तिपूर्ण*
*निज प्रभु के स्पर्श, आलिंगन, तन्मयता की आकांक्षिण।*

*जीवित रहे विगत युग इस एक क्षण को लक्ष्य कर;*
*जगत् धड़कता है कृतकृत्य मुझमें अब चिरकाल के अनन्तर।*

*CWSA* खण्ड २, पृ. ६०८ **श्रीअरविन्द**

## अवतार तथा विभूति

क्रमविकास के संकट-काल में तथा जब कोई विशेष कार्य करना होता है तब अवतार की आवश्यकता होती है।

अवतार विशेष अभिव्यक्ति होते हैं जब कि बाक़ी समय सामान्य मनुष्य के अन्दर विभूति के रूप में भगवान् ही कार्य करते हैं।

CWSA खण्ड २८, पृ. ४८५

# अवतार तथा विभूतियाँ

**दशावतार की क्रमविकासात्मक कथा**

अगर अवतारवाद को क्रमविकास के साथ नहीं जोड़ा जाये तो इसका बहुत मामूली अर्थ रह जायेगा। हिन्दुओं की दस अवतारों की परम्परा भी एक तरह से क्रमविकास को ही दर्शाती है। सबसे पहले मत्स्यावतार, उसके बाद जल और स्थल के बीच का उभयचर प्राणी कूर्मावतार, फिर, स्थल का पशु वराह, फिर मनुष्य और पशु को जोड़ने वाले नरसिंह अवतार, फिर वामन-रूप में मनुष्य, जो छोटा, अविकसित और भौतिक होने पर भी अपने अन्दर देवत्व को धारण किये हुए था और सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसका अधिकार था, उसके बाद आये राजसिक, सात्त्विक तथा निर्गुण अवतार जो मानव विकास को प्राणिक-राजसिक मनुष्य से ऊपर उठा कर सात्त्विक-मानसिक मनुष्य तक ले गये और फिर उसे अधिमानसिक अतिमानव तक पहुँचा दिया। कृष्ण, बुद्ध और कल्कि अन्तिम तीन अवस्थाओं, आध्यात्मिक विकास के स्तरों को दर्शाते हैं। कृष्ण अधिमानस की सम्भावना को उद्‌घाटित करते हैं, बुद्ध चरम मुक्ति के परे निकल जाना चाहते हैं, लेकिन वह मुक्ति अभी तक अभावात्मक है, यानी, वे क्रमविकास को पूर्ण करने के लिए भावात्मक रूप से पृथ्वी पर वापस नहीं आते; इसका सुधार करते हैं कल्कि जो विरोधी आसुरिक शक्तियों का विनाश करके पृथ्वी पर भगवान् का राज्य स्थापित करते हैं। क्रमविकास की यह प्रगति सचमुच आश्चर्यजनक है, साथ ही साथ यह निर्भ्रान्त भी है, इसमें भूल की कोई गुंजाईश नहीं है।

अब रही अवतार के जीवनों के बीच के जीवनों की बात। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि कृष्ण भूतकाल में होने वाले बहुत से जीवनों की बात कहते हैं, केवल कुछ थोड़े से प्रधान जन्मों की ही नहीं कहते, और दूसरे, जहाँ वे एक ओर स्वयं को भगवान् कहते हैं वहीं दूसरे श्लोक में वे स्वयं को एक विभूति बतलाते हैं, 'वृष्णीनां वासुदेवः'। अतः, हम सहज ही यह मान सकते हैं कि बहुत से जीवनों में उन्होंने अपने-आपको विभूति के रूप में प्रकट किया और पूर्णतर भागवत चेतना को परदे की ओट रखा। यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि अवतार का उद्देश्य क्रमविकास को आगे बढ़ाना है तो यह बात बिलकुल युक्तिसंगत मालूम होती है, भगवान् महान्

संक्रमण-काल की अवस्थाओं में तो अवतार बन कर प्रकट होते हैं और साधारण संक्रमण-कालों में विभूति बन कर आते हैं।

**अवतार राम**

जहाँ तक अवतारवाद की बात है, मैं राम को अवतार स्वीकार करता हूँ, क्योंकि वे योजना के अन्दर एक स्थान को पूरा करते हैं—और मुझे ऐसा लगता है कि उसे वे समुचित रूप में ही पूरा करते हैं—और इस कारण स्वीकार करता हूँ कि जब मैं रामायण पढ़ता हूँ तब मैं एक महान् अन्तःप्रेरणा अनुभव करता हूँ जिसे मैं मान्यता देता हूँ और जो इस कहानी को—यद्यपि यह महज़ परियों की कहानी प्रतीत होती है—एक ऐसी महान् संकट पूर्ण संक्रमणकालीन घटना का रूपक बना देती है जो पार्थिव क्रमविकास के अन्दर घटित हुई थी। इतना ही नहीं, वह प्रमुख चरित्र के व्यक्तित्व और कार्य को एक ऐसा अर्थ प्रदान करती है जो विशाल, आदर्शमय, विश्वव्यापी है और यदि ये कार्य किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा घटनाओं की किसी दूसरी योजना के अन्दर किये गये होते तो इनको यह अर्थ नहीं मिला होता। अवतार असाधारण कार्यों को करने के लिए बाध्य नहीं होता, बल्कि वह अपनी क्रियाओं को या अपने कार्य को अथवा वह जो कुछ है उसको—इनमें से किसी एक को या सबको—एक ऐसा अर्थ और एक ऐसी प्रभावकारी शक्ति देने को बाध्य होता है जो पृथ्वी और उसकी जातियों के इतिहास में किये जाने वाले किसी प्रमुख कार्य के अंग हों।
CWSA खण्ड २८, पृ. ४८७, ४९०

**राम का कार्य**

नहीं, निश्चय ही नहीं—कोई अवतार आध्यात्मिक भविष्यवक्ता होने के लिए बिलकुल बाध्य नहीं है—सच पूछा जाये तो वह कभी मात्र भविष्यवक्ता नहीं होता बल्कि वह एक संसिद्धकर्ता, एक संस्थापक होता है—केवल बाहरी चीज़ों का नहीं, यद्यपि वह बाहर भी कुछ संसिद्ध करता है, बल्कि, जैसा कि मैंने कहा, कुछ ऐसी मौलिक और महत्त्वपूर्ण वस्तु का संस्थापक होता है जो पार्थिव क्रमविकास के लिए आवश्यक होती है—उस पार्थिव विकास के लिए जो क्रमशः एक-एक स्तर पार करता हुआ भगवान् की

ओर ले जाने वाला शरीरधारी आत्मा का विकासक्रम है। उस विकास के आध्यात्मिक स्तर को स्थापित करना राम का कार्य बिलकुल नहीं था—अतएव, उसके साथ उन्होंने बिलकुल ही अपना कोई सरोकार नहीं रखा। उनका कार्य था, रावण का वध करना और राम-राज्य स्थापित करना—दूसरे शब्दों में, भविष्य के लिए ऐसे सात्त्विक सभ्य मनुष्य के योग्य एक व्यवस्था की सम्भावना को निश्चित कर देना जो अपने जीवन को बुद्धि, सूक्ष्मतर भावों, नैतिकता अथवा कम-से-कम नैतिक आदर्शों के द्वारा, जैसे, सत्य, आज्ञाकारिता, सहयोग और सामञ्जस्य, पारिवारिक और सार्वजनिक सुव्यवस्था का बोध आदि के द्वारा, परिचालित करता है—इसे एक ऐसे जगत् में स्थापित करना जो अभी तक विद्रोही शक्तियों के अधिकार में है, जहाँ पशु-मन और प्राणिक अहंकार की शक्तियाँ अपनी निजी सन्तुष्टि को ही जीवन का विधान मानती हैं, दूसरे शब्दों में, जहाँ वानर और राक्षस राज्य करते हैं। यही अर्थ है राम और उनके जीवन-कार्य का तथा उन्होंने यह कार्य पूरा किया या नहीं किया इसके अनुसार विचार करना होगा कि वे अवतार थे या नहीं। उनका कार्य बालि जैसे दुर्धर्ष नृशंस पशु के साथ शूरवीर क्षत्रिय का सुखान्त नाटक खेलना नहीं था, बल्कि उनका कार्य था उसे मार डालना और विश्वव्यापी पशुभाव को अपने वश में करना। उनका कार्य निश्चय ही कोई पूर्ण व्यक्ति होना नहीं था बल्कि महान् आदर्श-रूप सात्त्विक मनुष्य होना था—सच्चा पति और प्रेमी, प्यारा और आज्ञाकारी पुत्र, स्नेही और आदर्श भाई, पिता और मित्र होना था—वे सब प्रकार के लोगों के मित्र हैं, अछूत गुह के मित्र, पशुओं के नेता सुग्रीव, हनुमान के मित्र, गिद्ध जटायु के मित्र, यहाँ तक कि राक्षस विभीषण के भी मित्र हैं। यह सब वे बहुत उज्ज्वल और आकर्षक रूप में थे पर सबसे अधिक सहज-स्वाभाविक और प्रामाणिक रूप में थे; हरिश्चन्द्र या शिवि की तरह किसी एक स्वर पर उनका अत्यधिक ज़ोर नहीं था बल्कि उनमें एक प्रकार की सुसामञ्जस्यमय परिपूर्णता थी। परन्तु सबसे अधिक उनका कार्य था उन सब चीज़ों को स्थापित करना और उनका आदर्श रखना जिन पर सामाजिक आदर्श और उसका स्थायित्व निर्भर करता है, जैसे, सत्य और न्यायपरता, धर्मबोध, जनभावना और सुव्यवस्था का बोध। अपनी पितृभक्ति और अपने पिता के प्रति आज्ञाकारिता की अपेक्षा बहुत अधिक—यद्यपि उसके लिए

भी—उन्होंने प्रथम सत्य और न्याय के लिए अपने व्यक्तिगत अधिकारों का त्याग किया जो उन्हें राजा और प्रजा द्वारा उत्तराधिकारी चुने जाने के कारण मिले थे और अपने जीवन के सर्वोत्तम चौदह वर्षों का बलिदान कर देश से बाहर वे वनवास में रहे। अपनी लोक-भावना और सामाजिक सुव्यवस्था के लिए (प्राचीन भारतीयों, यूनानियों और रोमनों की दृष्टि में यह एक महान् और सर्वोच्च नागरिक गुण माना जाता था, क्योंकि उस युग में मानव-विकासधारा की सबसे बड़ी आवश्यकता व्यक्ति का पृथक् विकास और उसकी सन्तुष्टि नहीं, बल्कि सुव्यवस्थित समाज की सुरक्षा थी) उन्होंने अपने निजी सुख और पारिवारिक जीवन तथा सीता के सुख का बलिदान कर दिया। इस विषय में समस्त प्राचीन जातियों के नैतिक बोध के साथ वे एकमत थे, यद्यपि आधुनिक मनुष्य की बाद की रूमानी व्यष्टिवादी भावुकताप्रधान नैतिकता से उनका विरोध था, क्योंकि आधुनिक मनुष्य उस कम कठोर नैतिकता को ठीक इसी कारण ग्रहण कर सकता है कि प्राचीन लोगों ने सामाजिक सुव्यवस्था की भावना से संसार को सुरक्षित करने के लिए व्यक्ति का बलिदान कर दिया। अन्त में राम का कार्य यह था कि वे रावण के साम्राज्य, राक्षसीय आतंक का नाश करके सात्त्विक मानव के आदर्श के लिए संसार को सुरक्षित बना दें। यह सब उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कर्म में विद्यमान एक ऐसी दिव्य प्रेरणा के साथ किया कि उनके स्वरूप की छाप भारतीय संस्कृति के मन पर बीस लाख वर्षों से अधिक काल से छपी हुई है और जिस चीज़ का उन्होंने प्रतिनिधित्व किया वह सभी देशों के मनुष्यों की बुद्धि और आदर्शवादी मन पर छायी हुई है, तथा मानवीय प्राण के निरन्तर विद्रोह करते रहने पर भी वह शायद तब तक वैसी ही बनी रहेगी जब तक कोई महत्तर आदर्श नहीं खड़ा हो जाता। और इन सब बातों के बावजूद तुम यह कहते हो कि वे अवतार नहीं थे? यदि तुम चाहो तो कहो—पर, कम-से-कम, वे अत्यन्त महान् विभूतियों के बीच अपना स्थान रखते हैं। अब तुम उन्हें पदच्युत कर सकते हो—क्योंकि अब मनुष्य सात्त्विक आदर्श से सन्तुष्ट नहीं है और उससे बड़ी कोई चीज़ खोजता है—परन्तु उनका कार्य और अर्थ पृथ्वी की विकसनशील जाति के भूतकाल पर हमेशा अंकित रहेंगे।

CWSA खण्ड २८, पृ. ४९१-९२

## द्वापर के अवतार श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण अवतार हैं। उन्होंने मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के नियमों को मान कर मानव आकार ग्रहण करना स्वीकार कर लिया और उसी के अनुसार उन्होंने अपनी लीला रची। अगर हम इस लीला के सुस्पष्ट तथा गुह्य अर्थ को पकड़ पायें तो हम इस जगत्-लीला के अर्थ, उद्देश्य तथा इसकी प्रक्रिया को भी समझने में समर्थ होंगे। इस लीला अथवा खेल की पहली चाल है कि इसकी प्रत्येक क्रिया के पीछे पूर्ण ज्ञान है। कौन-सा ज्ञान किस क्रिया को सञ्चालित करता है इसका रहस्य *गीता* में श्रीकृष्ण ने उद्घाटित किया है।

महाभारत के श्रीकृष्ण समस्त कर्म के नायक, महान् योगी, संसार के एक महान् पुरुष, एक साम्राज्य के संस्थापक, राजनेता तथा योद्धा, और साथ ही क्षत्रिय-शरीर में ब्रह्मविद् थे। उनके जीवन में हम 'महाशक्ति' की अतुलनीय अभिव्यक्ति तथा रहस्यमय लीला को देखते हैं। उस रहस्य की व्याख्या *गीता* में की गयी है।

श्रीकृष्ण जगतों के स्वामी हैं, सार्वभौम वासुदेव हैं, फिर भी अपनी महानता को छिपाते हुए उन्होंने मनुष्यों के साथ पिता और पुत्र का, भाई तथा पति का, घनिष्ठ सहचर तथा मित्र का और साथ ही शत्रु का भी सम्बन्ध बना कर जगत् की इस लीला में प्रवेश किया। अपने जीवन में उन्होंने आर्य ज्ञान के चरम रहस्य को अपनाया और साथ ही भक्ति-मार्ग के उच्चतम अर्थ को दर्शाया। *भगवद्गीता* की शिक्षा में इन्हीं सिद्धान्तों का सारतत्त्व है।

द्वापर तथा कलि के सन्धिकाल में श्रीकृष्ण ने अवतार-रूप ग्रहण किया। हर युग की सन्धि में भगवान् इसी तरह अवतरित हुए हैं। चारों युगों में जहाँ कलियुग सबसे अधम है, वहीं वह सर्वोत्तम भी है। वर्तमान सन्धि-काल के इस युग में कलि का राज चल रहा है। इसमें पाप को उकसाया जाता है और कलि के राज्य में यही मनुष्य की प्रगति का प्रमुख शत्रु है; कलियुग में ही मानव पतन के रसातल में धँस जाता है। लेकिन इसी युग में यह सम्भव होता है कि मनुष्य प्रत्येक बाधा से लड़ने की सामर्थ्य विकसित कर उसके परे चला जाये तथा यहीं पुराने विध्वंस से नूतन सृष्टि का जन्म होता है। जगत् के क्रमविकास की प्रक्रिया में अत्यधिक बढ़े हुए अशुभ तत्त्वों

को इसी युग में नष्ट किया जाता है और दूसरी ओर नये सर्जन के बीज बो दिये जाते हैं, उनमें अंकुर भी फूटने लगते हैं और वे ही आगे आने वाले सत्ययुग में विशाल वृक्ष में विकसित हो जाते हैं।

—श्रीअरविन्द की 'बंगला रचनाओं' से

## श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता

श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता कम आध्यात्मिक महत्त्व रखती है और वह आवश्यक नहीं, पर फिर भी उसका पर्याप्त मूल्य है। मुझे ऐसा नहीं लगता कि इस विषय में कोई युक्तिसंगत सन्देह उठ सकता है कि मनुष्यरूपी कृष्ण कोई पौराणिक या कोई काव्यात्मक आविष्कार नहीं हैं बल्कि वे वास्तव में पृथ्वी पर विद्यमान थे तथा उन्होंने भारत के भूतकाल में एक भूमिका निभायी। दो तथ्य स्पष्ट रूप में प्रकट होते हैं—एक तो यह कि वे एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक व्यक्ति माने जाते थे, वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने की चर्चा एक उपनिषद् में अभिलिखित है, और दूसरे, परम्परागत रूप में वे एक दिव्य पुरुष माने जाते थे, ऐसे पुरुष जो अपनी मृत्यु के बाद देवता के रूप में पूजे जाते हैं; ये बातें महाभारत और पुराणों की कहानी से भिन्न हैं। यह मानने का कोई कारण नहीं कि भागवत धर्म के साथ, जो धर्म की भारतीय आध्यात्मिकता-रूपी सरिता की एक महत्त्वपूर्ण धारा है, उनके नाम का सम्बन्ध मात्र एक पौराणिक या काव्यात्मक आविष्कार के ऊपर स्थापित था। महाभारत एक काव्य है, इतिहास नहीं है, पर यह स्पष्ट रूप में एक महान् ऐतिहासिक घटना, परम्परागत रूप में स्मृति में सुरक्षित घटना के ऊपर आधारित एक काव्य है। इससे सम्बन्धित कुछ व्यक्ति, जैसे, धृतराष्ट्र, परीक्षित आदि निस्सन्देह विद्यमान थे और एक नेता, योद्धा और राजनीतिज्ञ के रूप में कृष्ण ने जो भूमिका निभायी थी उसकी कहानी को एक ऐसी सम्भाव्य घटना तथा बाह्य रूप में एक ऐसी परम्परा पर आधारित स्वीकार कर सकते हैं जिसे ऐतिहासिक मूल्य दिया जा सकता है और जो एक पौराणिक या केवल काव्यात्मक आविष्कार का वातावरण नहीं रखती। बस, सैद्धान्तिक युक्तितर्क की दृष्टि से मानवरूपी कृष्ण के ऐतिहासिक व्यक्ति होने के विषय में निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है; पर मेरे विचार में इससे बहुत अधिक

बात इसमें है और मैंने सर्वदा ही भगवान् के अवतार को एक सत्य घटना के रूप में स्वीकार किया है; मैंने कृष्ण की ऐतिहासिकता को उसी तरह माना है जैसे कि ईसा की ऐतिहासिकता को मैं मानता हूँ।

वृन्दावन की कहानी एक दूसरा ही विषय है; यह महाभारत की मुख्य कहानी में नहीं आती और इसका मूल पुराणों में है। यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि यह हमेशा ही माना जाता रहा है कि यह कहानी रूपकात्मक है। एक समय मैंने भी इस व्याख्या को स्वीकार किया था, पर बाद में मुझे इसका त्याग करना पड़ा; पुराणों में ऐसी कोई चीज़ नहीं जो किसी ऐसे आशय को प्रकट करती हो। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह कहानी किसी ऐसी चीज़ से सम्बन्धित है जो वास्तव में घटी थी या कहीं घटती है। गोपियाँ पुराणों के लिए वास्तविक व्यक्ति हैं, रूपक नहीं हैं। यह उनके लिए कम-से-कम एक गुह्य सत्य था, और गुह्य तथा रूपक एक ही चीज़ नहीं हैं। रूपक एक अर्थपूर्ण मानसिक रचना-मात्र अथवा एक काल्पनिक आविष्कार-मात्र हो सकता है, पर गुह्य एक सत्य वस्तु है जो वास्तव में कहीं पर, मानों भौतिक दृश्य के पीछे है, और पार्थिव जीवन के लिए एक सच्चाई रखती है तथा पार्थिव जीवन पर जो उसका प्रभाव पड़ता है वह यहाँ अपने-आपको व्यक्त भी कर सकता है। ऐसा लगता है कि गोपियों की लीला के विषय में यह कल्पना की गयी है कि यह लीला दिव्य गोकुल में निरन्तर चल रही है और यही पार्थिव वृन्दावन में प्रक्षिप्त हुई थी; इसका अनुभव सर्वदा ही प्राप्त किया जा सकता है तथा इसके अर्थ को अन्तरात्मा के अन्दर यथार्थ रूप प्रदान किया जा सकता है। यह बात मानी जा सकती है कि पुराणों के लेखकों ने ऐसा मान लिया था कि वह लीला वास्तव में अवतार कृष्ण के जीवन में पृथ्वी पर प्रक्षिप्त हुई थी और भारत के धार्मिक लोगों ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है।

CWSA खण्ड २८, पृ. ४८२-८४

## मानवता के भार को ढोना

तुम कहते हो कि तुम्हारे लिए यह पथ बहुत कठिन है या तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल नहीं है, साथ ही तुम्हारा यह कहना भी है कि मेरे या माताजी के जैसे "अवतार" ही यह कर सकते हैं। यह बड़ी अजीब-सी

भ्रान्त धारणा है; क्योंकि, इसके विपरीत, यह पथ सबसे सरल, सबसे सहज और सबसे ऋजु पथ है, और कोई भी व्यक्ति—अगर वह अपने मन और अपने प्राण को शान्त कर ले—इसका अनुसरण कर सकता है, यहाँ तक कि वे भी जिनके अन्दर तुमसे दसगुनी कम क्षमता है, इसे कर सकते हैं। तनाव, दबाव और घोर परिश्रम का दूसरा पथ सचमुच कठिन होता है और उसमें तपस्या की महान् शक्ति की आवश्यकता होती है। रही बात माताजी और मेरी, तो हमें सभी पथों को आज़माना पड़ा, सभी प्रक्रियाओं का अनुसरण करना पड़ा, कठिनाइयों के पहाड़ों को लाँघना पड़ा, तुमसे या आश्रम अथवा बाहर के किसी भी व्यक्ति से कहीं ज़्यादा भारी बोझ कठिनतम परिस्थितियों में ढोना पड़ा, घाव सहने पड़े, अगम्य दलदलों, तपते रेगिस्तानों और बीहड़ जंगलों से रास्ता निकालना पड़ा, विरोधी शक्तियों की राशि पर विजय पानी पड़ी, मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि हमें ऐसे-ऐसे कार्य करने पड़े जैसे हमसे पहले किसी को नहीं करने पड़े। क्योंकि हमारे जैसे कार्य में पथ-प्रदर्शक को न केवल भगवान् को नीचे लाना, उनका प्रतिनिधित्व करना, उन्हें मूर्त रूप देना होता है, बल्कि मानवता के अभीप्सा करने वाले, यानी आरोहणकारी तत्त्व का भी प्रतिनिधित्व करना होता है, मानवता के बोझ को पूरी तरह से अनुभव करना होता है, मात्र लीला के तौर पर नहीं बल्कि कठोर गाम्भीर्य के साथ जीवन की सभी बाधाओं, मुसीबतों, अड़ंगों का सामना करना होता है, केवल तभी घोर परिश्रम के साथ पथ पर चलना सम्भव होता है। लेकिन न यह आवश्यक है न सह्य कि हम हमसे पहले आये लोगों की सम्पूर्ण अनुभूति को पहले दोहरायें। चूँकि सम्पूर्ण अनुभूति प्राप्त है इसलिए हम औरों को ऋजु तथा सरल पथ दरशा सकते हैं—अगर वे इसे अपनाना चाहें तो अपनायें। चूँकि हमने यह अनुभूति बहुत मूल्य देकर पायी है कि हम तुम्हें और दूसरों को प्रेरित कर बलपूर्वक कह सकते हैं कि "चैत्य मनोभाव अपनाओ; ऋजु तथा सूर्यालोकित पथ पकड़ो—भगवान् प्रकट या गुप्त रूप से तुम्हें सहारा दे रहे हैं—अगर गुप्त रूप से भी दे रहे हों तो उचित समय पर वे स्वयं को तुम्हारे सम्मुख प्रकट करेंगे—कठोर, बाधायुक्त, चक्करदार और कठिन पथ अपनाने का आग्रह मत करो।"

CWSA खण्ड ३२, पृ. ९४-९५

## दिव्य बलिदान

निश्चित ही, अगर हम शुरू से ही भौतिक रूप से अतिमानस में रहते तो कोई भी हमारे समीप नहीं आ पाता, न कोई साधना ही हो पाती। हमारे तथा पृथ्वी और मानव के बीच सम्पर्क की कोई आशा ही नहीं रहती। अब वर्तमान में भी, हमेशा अपनी उच्च चेतना में बने रहने की बजाय श्रीमाँ को साधकों की निम्न चेतना में उतरना पड़ा, वरना वे कहना शुरू कर देते, "कितनी दूर थीं आप, कितनी कठोर थीं आप; आप मुझसे प्रेम नहीं करतीं, मुझे आपसे कोई सहायता नहीं मिलती, वग़ैरह, वग़ैरह।" मानव से मिलने के लिए भगवान् को अपने-आपको घूँघट में रखना होता है।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ९३

## मानवता की कूच के नेता

पॉण्डिचेरी आने के बाद से श्रीअरविन्द का योगाभ्यास अधिक-से-अधिक तल्लीनकारी होता चला गया। उन्होंने किसी भी सार्वजनिक राजनीतिक गतिविधि में भाग लेना बन्द कर दिया। उन्होंने अनेक बार पुनर्गठित भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के सत्रों की अध्यक्षता करने का अनुरोध ठुकरा दिया। उन्होंने यह नियम बना लिया कि अब वे किसी प्रकार का ऐसा सार्वजनिक वक्तव्य अथवा कोई लेख नहीं देंगे जो उनकी आध्यात्मिक गतिविधियों से सम्बन्धित न हो। बाद में उन्होंने जो 'आर्य' में लिखा वह अपवाद था। कुछ वर्षों के लिए उन्होंने उस क्रान्तिकारी दल के एक-दो व्यक्तियों के साथ निजी सम्बन्ध बनाये रखा जिसका उन्होंने नेतृत्व किया था, किन्तु कुछ समय के बाद इसे भी उन्होंने बन्द कर दिया और अब राजनीति में किसी भी प्रकार की उनकी सहभागिता नहीं रही। जैसे-जैसे भविष्य के प्रति उनकी दृष्टि स्पष्ट होती गयी, उन्होंने देखा कि भारत की स्वाधीनता अवश्यम्भावी है और समय के प्रयाण के साथ यह अवश्य आयेगी। भारतीय प्रतिरोध तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के दबाव से ब्रिटेन स्वाधीनता देने के लिए बाध्य हो जायेगा और भारत उस सम्भावना की ओर विरोध और अनिच्छा के बावजूद पहले से ही बढ़ रहा है। उन्होंने अनुभव किया कि सैनिक विप्लव की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और इसके लिए राष्ट्रीय हित को बिना कोई हानि पहुँचाये गुप्त तैयारी को स्थगित किया जा सकता है, यद्यपि क्रान्ति

की भावना को बनाये रखना होगा और इसे अक्षुण्ण बनाये रखा जायेगा। उनका राजनीति में अपना व्यक्तिगत हस्तक्षेप इसलिए अब अनिवार्य नहीं रहेगा। इसके अतिरिक्त, उनके समक्ष निर्धारित आध्यात्मिक कार्य का विस्तार अधिकाधिक स्पष्ट होने लगा और उन्होंने देखा कि इस पर उनकी सारी ऊर्जाओं का संकेन्द्रण आवश्यक है।...

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था—जैसा कि कुछ लोगों ने अनुमान किया—कि वे आध्यात्मिक अनुभूति की कुछ ऊँचाई में निवृत्त हो गये हैं और अब विश्व में या भारत की नियति में उनकी रुचि नहीं रही। ऐसा उनका तात्पर्य कभी नहीं हो सकता था, क्योंकि उनके योग का सिद्धान्त ही है—केवल भगवान् तथा पूर्ण आध्यात्मिक चेतना की सिद्धि नहीं बल्कि सम्पूर्ण जीवन तथा विश्व की गतिविधि को भी इस आध्यात्मिक चेतना तथा क्रिया के क्षेत्र में समाविष्ट करना तथा आत्मन् को जीवन का आधार बनाना तथा इसे एक आध्यात्मिक अर्थ प्रदान करना। अपनी निवृत्ति की अवधि में भी श्रीअरविन्द विश्व की और भारत की सभी घटनाओं पर गहरी निगरानी रखते थे तथा जब भी आवश्यक हुआ, सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करते थे, परन्तु केवल आध्यात्मिक शक्ति तथा नीरव आध्यात्मिक क्रिया के साथ।...

प्रथम हस्तक्षेप दूसरे महायुद्ध से सम्बन्धित था। आरम्भ में उन्होंने इसमें सक्रिय रुचि नहीं ली, किन्तु जब उन्हें लगा कि हिटलर उसका विरोध करने वाली सभी शक्तियों को रौंद देगा तथा नाज़ीवाद विश्व पर छा जायेगा, तब उन्होंने हस्तक्षेप करना आरम्भ किया। उन्होंने सार्वजनिक रूप से मित्र-राष्ट्रों का पक्ष लेने की घोषणा की, कोष के लिए अपील के उत्तर में कुछ वित्तीय योगदान किया तथा उन्हें उत्साहित किया जो सेना में प्रवेश के लिए या युद्ध के प्रयास में सहयोग देने के लिए उनकी सलाह माँगते थे। आन्तरिक रूप से उन्होंने डंकर्क के पतन के समय से—जब प्रत्येक व्यक्ति यह आशा करने लगा कि इंग्लैण्ड की हार शीघ्र होने वाली है और हिटलर की विजय सुनिश्चित है—मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में अपने आध्यात्मिक बल का प्रयोग किया और उन्होंने यह देख कर सन्तोष की साँस ली कि जर्मनी की विजय की गति रुक गयी है तथा युद्ध का ज्वार विपरीत दिशा में पलटने लगा है। यह उन्होंने इसलिए किया क्योंकि उन्होंने हिटलर तथा नाज़ीवाद के पीछे अन्धकार की आसुरिक शक्तियों को देखा तथा यह अनुभव किया कि उनकी सफलता

का अर्थ होगा, अशुभ की तानाशाही की सम्पूर्ण मानव के लिए दासता तथा क्रम-विकास में बाधा, विशेषकर मानव के आध्यात्मिक क्रम-विकास में रुकावट। इससे न केवल यूरोप ग़ुलाम हो जाता बल्कि एशिया और एशिया के अन्तर्गत भारत भी। वह ग़ुलामी इतनी भयानक होती जैसी इस देश ने कभी सहन नहीं की होगी और तब स्वाधीनता के लिए किये गये सारे कार्य व्यर्थ हो जाते। इसी कारण से प्रेरित होकर उन्होंने क्रिप्स-प्रस्ताव का भी सार्वजनिक रूप से समर्थन किया तथा काँग्रेस पर इसे स्वीकारने के लिए दबाव डाला... उन्होंने क्रिप्स-प्रस्ताव का समर्थन इसलिए किया क्योंकि इसकी स्वीकृति द्वारा भारत तथा ब्रिटेन आसुरिक शक्तियों के विरुद्ध एकजुट होकर खड़े हो सकें तथा क्रिप्स के समाधान को स्वाधीनता की दिशा में आगे बढ़े एक क़दम के रूप में प्रयुक्त किया जा सके।
CWSA खण्ड ३६, पृ. ६४-६६

*मेरे योग का उद्देश्य है भागवत सत्य तथा उसकी गतिशील निश्चितियों के प्रकाश, शक्ति तथा आनन्द को जीवन में नीचे उतार कर उसे रूपान्तरित करना। यह योग जगत् को त्याग कर तपस्या या संन्यास का नहीं, बल्कि दिव्य जीवन का योग है।*

*

*... इस योग का लक्ष्य जगत् तथा जीवन से बाहर निकल कर स्वर्ग या निर्वाण में जाना नहीं है बल्कि जीवन तथा अस्तित्व का परिवर्तन है, यह जीवन को गौण या संयोग के रूप में नहीं बल्कि एक सुस्पष्ट तथा मुख्य लक्ष्य के रूप में मानता है।*

*

*... हमारा लक्ष्य व्यक्ति के लिए भागवत उपस्थिति की व्यक्तिगत प्राप्ति नहीं बल्कि यहाँ, पार्थिव चेतना के लाभान्वयन के लिए कोई वस्तु है, केवल विश्वातीत नहीं, वैश्व प्राप्ति है।*

श्रीअरविन्द

# दैनन्दिनी

**अगस्त**

१. हमेशा अपने 'आदर्श' के प्रति निष्ठावान् और अपनी क्रिया में सच्चे और निष्कपट रहो।

२. योग के दृष्टिकोण से तुम जो करते हो वह नहीं बल्कि तुम कैसे करते हो वह बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

३. शान्त और सुखी जीवन के लिए प्रेम करने के आनन्द के लिए प्रेम करना सबसे अच्छी स्थिति है। दूसरे शब्दों में कहें तो सभी चीज़ों के अन्दर भगवान् से प्रेम करना।
अगर इसका चरम बिन्दु यहाँ पहुँचे कि तुम वही चाहो जो भगवान् चाहते हैं, तो पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जाती है।

४. हमारी चेतना को समस्त अज्ञान से शुद्ध कर ताकि हम सत्य में तेरी सेवा कर सकें।

५. तुम्हारी मदद करने और तुम्हारी रक्षा करने के लिए मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ। अपने ऊपर व्यर्थ की कल्पनाओं का प्रभुत्व न होने दो। तुम्हारे हृदय की गहराइयों में शान्ति मौजूद है। वहाँ एकाग्र होओ और तुम उसे पा लोगे।

६. सभी अच्छा काम मिल-जुलकर धीरज के साथ किये गये प्रयास से सम्पन्न होता है।

७. दूसरों की भूलों पर क्रुद्ध होने से पहले तुम्हें अपनी भूलों को याद कर लेना चाहिये।

८. जीवन के प्रत्येक क्षण तुम्हें भागवत कृपा और निजी सन्तुष्टि के बीच चुनाव की उपस्थिति में खड़ा किया जाता है।

९. बलवान् के लिए बल ठीक है। लेकिन अभीप्सा और उसे उत्तर देने वाली भागवत कृपा कपोल-कल्पनाएँ नहीं हैं। वे आध्यात्मिक जीवन की महान् वास्तविकताएँ हैं। (श्रीअरविन्द)

१०. हे प्रभु! मेरे अन्दर तेरे इस पवित्र प्रेम का पुष्प प्रस्फुटित कर दे ताकि जो भी हमारे समीप आयें उन सबको वह सुगन्धित कर दे और वह

सुगन्ध उन्हें पवित्र बना दे।

११. इसी प्रेम में है शान्ति और आनन्द, समस्त शक्ति और सम्पूर्ण उपलब्धि का स्रोत। यह अचूक वैद्य है, परम सान्त्वनाप्रदाता है, यह विजेता है, सर्वोच्च शिक्षक है।

१२. जो कुछ है, जो कुछ होगा, जो कुछ नहीं है उस सबके अन्तस्तल में तेरी दिव्य चिरस्थायी मुस्कान विद्यमान है।

१३. हे प्रभु! हे दिव्य प्रेम, संसार भर में फैल जा, जीवन को पुनरुज्जीवित कर, बुद्धि को आलोकित कर, अहंकार के बाँधों को तोड़ डाल, अविद्या को दूर कर, पृथ्वी के परम अधीश्वर के रूप में चमक उठ।

१४. सत्ता में सच्चे चैत्य जीवन की अभिव्यक्ति है शान्ति, प्रफुल्ल प्रशान्ति।

१५. ... किसी भी तरह का दुःख-दर्द हमारे किसी कमज़ोर बिन्दु का मूल्यवान् संकेत है, उस बिन्दु का जो हमसे महानतर आध्यात्मिक प्रयास की माँग करता है।

१६. तेरा प्रेम विश्व से भी अधिक विशाल है, और युग-युगान्तरों से भी कहीं अधिक स्थायी है : वह अनन्त, शाश्वत है; वह स्वयं तू है। और मैं बस तू ही बन जाना चाहती हूँ तथा बस तू ही हूँ, क्योंकि यही है तेरा विधान, यही है तेरी इच्छा।

१७. उस सत्य प्रेम को उत्पन्न कर जो सभी कष्टों का शमन करता है; उस अचल-अटल शान्ति को स्थापित कर जिसमें निवास करती है सच्ची भक्ति; प्रदान कर हमें वह चरम ज्ञान जो समस्त अन्धकार का विनाश कर देता है।

१८. उठो और सजीव बनो, उठो और ज्योतिर्मय बनो, उठो और सबके रूपान्तर के लिए युद्ध करो। देखो शक्ति यहाँ विद्यमान है।

१९. शेखी, शेखी, प्रगति के लिए सबसे बड़ी बाधाओं में से एक। अगर तुम सच्ची प्रगति की अभीप्सा करते हो तो तुम्हें बड़ी सावधानी के साथ इस मूर्खता से बचना चाहिये।

२०. तुम जो कुछ जानते हो उसे व्यवहार में लाओ, सीखने का इससे उत्तम उपाय और कोई नहीं है।

२१. असामञ्जस्य के बाहरी कारणों की अपेक्षा अधिक खोज करो आन्तरिक कारणों की। अन्तर ही बाह्य पर शासन करता है।

२२. सुख जीवन का लक्ष्य नहीं है, सामान्य जीवन का लक्ष्य है कर्तव्यपालन और आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है भगवान् की प्राप्ति।

२३. पीछे मत देखो, हमेशा आगे देखो, तुम जो करना चाहते हो उसे देखो—तो तुम निश्चय ही प्रगति करोगे।

२४. अगर तुम ध्यानपूर्वक निरीक्षण करो तो तुम देखोगे कि ये सब चीज़ें —एक का दुर्व्यवहार, दूसरे का क्रोध—अत्यन्त गौण हैं और इन्हें उदासीनता के साथ लेना चाहिये। इनके कारण तुम अपने-आपको इतना अधिक विक्षुब्ध न होने दो। चरम महत्त्व की एकमात्र वस्तु है तुम्हारी साधना और तुम्हारा आध्यात्मिक विकास। बस, किसी भी चीज़ को उसका स्पर्श करने या उसे बिगाड़ने मत दो।

२५. अभीप्सा की लौ इतनी सीधी और इतनी तीव्र होनी चाहिये कि कोई बाधा उसे विलीन न कर सके।

२६. हर्ष के बाद शोक अनिवार्य रूप से आये ही इसका कोई यथार्थ कारण नहीं—सिवाय इसके कि प्राण की ऐसी आदत ही हो। पर इस आदत पर विजय पायी जा सकती है।

२७. कैसी भी कठिनाइयाँ या बाधाएँ क्यों न आयें, एकमात्र आवश्यक चीज़ है कि मनुष्य भागवत शक्ति तथा पथ-प्रदर्शन में पूरा विश्वास रख कर चुपचाप चलता रहे, साधना की क्रिया के प्रति तब तक अपनी समस्त सत्ता को निरन्तर और अधिकाधिक खोलता रहे जब तक सब कुछ सचेतन न हो जाये और आवश्यक परिवर्तन के लिए सहमत न हो जाये।

२८. किसी आदर्श के लिए जीने में तुम जिस आनन्द का अनुभव करते हो वह पथ की सभी कठिनाइयों की निश्चित क्षतिपूर्ति है।

२९. अपनी नियति में श्रद्धा रखो और तुम्हारा पथ प्रदीप्त हो उठेगा।

३०. स्थिरता और तमस् में घपला मत करो। स्थिरता है आत्म-संयत शक्ति, अचञ्चल और सचेतन ऊर्जा, आवेशों पर प्रभुत्व और अचेतन प्रतिक्रियाओं पर नियन्त्रण। काम में स्थिरता निपुणता का मूल और पूर्णता की अनिवार्य शर्त है।

३१. केवल उसी चीज़ को प्रोत्साहित करो जो तेज़ी से प्रभु की ओर ले जाती हो और भागवत प्रयोजन को पूरा करती हो।

# एक नयी जगत्-व्यवस्था

हमारे यहाँ बहुत-से पुराणपन्थी सौन्दर्य से बचने की शिक्षा देते हैं परन्तु श्रीमाँ इसके विपरीत कहती हैं कि भौतिक में भगवान् सौन्दर्य के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। आधुनिक विज्ञान और हमारे प्राचीन ज्ञान में फ़र्क बताते हुए माताजी शंकर और श्रीअरविन्द की दृष्टि में फ़र्क बतलाती हैं। उनका कहना है कि शंकर को सत्य-चेतना की एक झाँकी मिली थी इसलिए उन्होंने घोषणा कर दी कि जगत् मिथ्या है, लेकिन श्रीअरविन्द उसके मिथ्यात्व को देखते हुए भी कहते हैं कि उसे मिथ्या मान कर छोड़ नहीं देना चाहिये, उसे सत्य में परिवर्तित करना होगा। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो परलोक में भगवान् को पाने की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और साहस-भरा कार्य है भगवान् को इहलोक में अभिव्यक्त करना।

श्रीमाँ अपने एक वार्तालाप में कहती हैं कि ऐसे लोग हैं जो जीवन और जगत् को भ्रम और माया मानते हैं। उनका विचार है, भगवान् को पाने के लिए इस जगत् का त्याग ज़रूरी है क्योंकि जगत् और भगवान् एक-दूसरे के विपरीत हैं। इस पर श्रीअरविन्द कहते हैं, "शायद वे जगत् के बाहर जाकर भगवान् को पा लें परन्तु भागवत जीवन को वे न पायेंगे।" वे दोनों में तुलना करते हुए कहते हैं कि एक स्थिति में अतिपार्थिव और अभिव्यक्त भगवान् हैं, दूसरी में ऐसे भगवान् हैं जो जीवन में अभिव्यक्त हुए हैं या हम उन्हें जीवन के द्वारा पा सकते हैं।

और ऐसे विश्व में, जिसका विकास जारी है, यह आशा ज़रूर की जा सकती है कि वर्तमान मिथ्यात्व कम होगा और भगवान् की अभिव्यक्ति दिन-प्रति-दिन की बढ़ती हुई अनुभूति हो जायेगी।

हमारी निम्न प्रकृति में परम सत्य धुँधला-सा हो जाता है और परस्पर विरोधी शक्तियाँ काम करती हैं; लेकिन इस दूषित पुरातन जगत् को बदलना होगा और एक नयी जगत्-व्यवस्था को आना होगा।

जैसा कि श्रीमाँ ने कहा है कि पुरातन और नवीन का संघर्ष ही योग का रहस्य है, यदि तुम उस परम विधान और व्यवस्था के प्रति सच्चे रहने पर तुले रहो जो तुम्हारे सामने अभिव्यक्त हो गया है तो निश्चित रूप से तुम्हारे अन्दर जो भाग संयोग के क्षेत्र के साथ बँधे हुए हैं, वे भले धीरे-धीरे

ही क्यों न हों, बदल जायेंगे और दिव्य बन जायेंगे। आज जो कठिनाइयाँ हो रही हैं वे प्रसव-पीड़ा से अधिक नहीं हैं।

योग प्राचीन और नवीन के बीच चलने वाला सतत संघर्ष है जो अन्धकार की खाइयों में छिपे हुए और पराजय स्वीकार न करने वाले असुरों तथा न झुकने वाली भागवत शक्तियों के बीच होता है। माँ कहती हैं कि जीवन एक ऐसा युद्ध है जिसमें भगवान् सभी ब्योरों में तभी विजय पा सकते हैं जब निम्नतर प्रकृति विरोधी शक्तियों का पक्ष लेने की जगह भागवत प्रेरणाओं को ग्रहण करने के लिए तैयार हो। तुम्हें करना यह चाहिये कि अपने-आपको भागवत कृपा के हाथों में सौंप दो क्योंकि पहले प्रतिविकास के बाद उसने कृपा और प्रेम में आकर ही विश्व को ऊँचा उठाने का कार्य स्वीकार किया था।

श्रीअरविन्द ने यही बात अपने छोटे-से महान् ग्रन्थ 'माता' में इन शब्दों में कही है, "दो शक्तियाँ हैं जो आपस में मिल कर ही उस महान् उद्यम और कठिन कार्य को सिद्ध कर सकती हैं जो हमारा लक्ष्य है। एक है दृढ़ और अचूक अभीप्सा जो नीचे से पुकारती है और दूसरी है परम कृपा जो ऊपर से उत्तर देती है।"

एक के बाद एक अनेक अवतारों ने चेतना के सोपान में नयी-नयी सीढ़ियाँ जोड़ी हैं और अब जो सीढ़ी जोड़ी जा रही है वह है अतिमानस की सीढ़ी। इस योग का पूरा लक्ष्य है अतिमानस तक पहुँचना और इस शिखर को तली के साथ जोड़ना और मानव तथा पार्थिव रूपान्तर को सिद्ध करना।

—आयंगार कृत 'ऑन द मदर' पुस्तक से

*... अपने-आपको अपने-आपसे महान् के हाथों में पूरी तरह दे देने से बढ़ कर पूर्ण और कोई आनन्द नहीं है। 'भगवान्', 'परम स्रोत', 'भागवत उपस्थिति', 'निरपेक्ष सत्य' इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि हम 'उसे' क्या नाम देते हैं या उसके किस रूप के द्वारा उस तक पहुँचते हैं–सम्पूर्ण निवेदन में अपने-आपको पूरी तरह भूल जाना 'उपलब्धि' की ओर जाने का निश्चिततम मार्ग है।*

*श्रीमाँ*

# एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार

*(एक शिष्या के नाम पत्र जो १९४४ में आठ वर्ष की उम्र में आश्रम आयी थीं और ग्यारह वर्ष की उम्र में यहाँ के शारीरिक शिक्षण-विभाग में कप्तान बन गयीं। उन्होंने तीस वर्षों तक इस विभाग का कार्य किया।)*

मनुष्यों की जो अधिकतर कठिनाइयाँ होती हैं उनका कारण होता है उनका अपनी क्रियाओं पर और दूसरों की क्रियाओं पर अपनी प्रतिक्रियाओं के नियन्त्रण का अभाव।

व्यक्ति को अपने स्वभाव और अपनी दुर्बलताओं के अनुसार अपने लिए एक अनुशासन बना लेना चाहिये जिसका बिना हेर-फेर किये अनुसरण करना चाहिये। उदाहरण के लिए, कभी झगड़ा न करो, जब कोई कुछ अप्रिय चीज़ कहे या करे तो कभी उत्तर न दो, जब तुम सहमत न हो तो बहस मत करो। स्पष्ट है जब चीज़ें या लोग वैसे न हों जैसे तुम चाहते हो तो कभी झल्लाओ मत।

स्वभावतः, यदि व्यक्ति को अपने ऊपर नियन्त्रण रखने की आदत नहीं है तो यह आदत डालने में बहुत समय लगता है, लेकिन अगर व्यक्ति प्रगति करना चाहता है तो यह एकदम अनिवार्य है।

मार्ग लम्बा है। इसलिए व्यक्ति के अन्दर धीरज होना चाहिये और अपने प्रति अचूक सच्चाई होनी चाहिये।

औरों के साथ शान्ति से रहने के लिए आत्मानुशासन ज़रूरी है, और इसका अभ्यास उन्हें भी करना चाहिये जो रूपान्तर की अभीप्सा नहीं करते।

आशीर्वाद।

१२ दिसम्बर १९७१

जब तुम अपना प्रेम किसी और मनुष्य को देते हो तो सामान्यतः पहली भूल यह होती है कि तुम उस व्यक्ति से भी प्रेम चाहते हो, उसके तरीक़े और उसके स्वभाव के अनुसार नहीं, बल्कि अपने ही तरीक़े और अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए। समस्त मानव दुःखों, निराशाओं और कष्टों का सबसे पहला कारण यही है।

प्रेम करने का अर्थ है, अपने-आपको मोल-भाव किये बिना देना— अन्यथा वह प्रेम नहीं होता। लेकिन इसे विरले ही समझ सकते हैं और उनमें भी विरले ही व्यवहार में ला सकते हैं और परिणाम दु:खद होते हैं।

जब कोई प्रगति करनी हो तो तुम्हें बस उसके लिए काम में लग जाना चाहिये, यह बहाना बनाये बिना कि और लोग ऐसा नहीं कर रहे।

हर एक पहले अपने लिए ज़िम्मेदार है; और अगर तुम औरों की सहायता करने की अभीप्सा रखते हो तो तुम जैसा होना चाहिये उसका उदाहरण बन कर ही सबसे अधिक प्रभावशाली ढंग से उन्हें सहायता दे सकते हो।

और फिर भागवत कृपा तो हमेशा ही है जो अद्‌भुत रूप से उन सबके लिए प्रभावकारी है जो सच्चे और निष्कपट हैं।

२८ दिसम्बर १९७१

हमें एक महिमामय भविष्य पर श्रद्धा प्रदान कर, और उसे चरितार्थ करने की क्षमता भी।

३० दिसम्बर १९७१

हे प्रभो, परम सत्य,

हम 'तुझे' जानने और 'तेरी' सेवा करने की अभीप्सा करते हैं।

हमें 'अपने' योग्य बालक बनने में सहायता कर।

और इसके लिए हमें 'अपने' सतत आशीर्वाद के बारे में सचेतन बना ताकि कृतज्ञता हमारे हृदयों को भर दे और हमारे जीवन पर शासन करे।

२ जनवरी १९७२

तुम्हें अपने अध्यवसाय में सच्चा होना चाहिये; तब तुम आज जो चीज़ें नहीं कर सकतीं उन्हें एक दिन नियमित और आग्रहपूर्ण प्रयासों के बाद कर सकोगी।

अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पण कर दो और भागवत सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी।

४ जनवरी १९७२

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १७, पृ. ४८१-८२

**'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'**

# मृत्यु के बाद

माताजी और श्रीअरविन्द ने विस्तार से बतलाया है कि मृत्यु के बाद आत्मा, चैत्य पुरुष और सूक्ष्म व्यक्तित्व का क्या होता है। मन बना रहता है, प्राण भी मृत्यु के बाद बना रहता है। कुछ लोग अपने अज्ञान के कारण कह सकते हैं कि अमुक आदमी मर कर साँप या बिल्ली बन गया, परन्तु यह ठीक नहीं होता। हो सकता है कि किसी आदमी के व्यक्तित्व का एक हिस्सा, निचला हिस्सा साँप या बिल्ली या हिरण के साथ एक हो जाये पर इसका यह मतलब नहीं है कि उसकी आत्मा या **पूरा** व्यक्तित्व उस पशु के साथ एक हो गया है। माताजी ने इस प्रकार के दो-तीन उदाहरण दिये हैं। उन्होंने बतलाया कि पहले महायुद्ध में उनका एक परिचित युवक मारा गया। वे उन दिनों पैरिस में रहती थीं, वे अपने कमरे में बैठी थीं कि अचानक एक बिल्ली उनके पास आयी और लगी उनके कपड़ों को खींचने। उन्होंने उस बिल्ली के अन्दर उस युवक की आँखें देखीं और उसकी उपस्थिति का अनुभव किया। उन्हें तुरन्त पता लग गया कि वह युवक मारा गया। बाद में उन्हें पता लगा कि वह युवक ठीक उसी समय मारा गया था जब वह बिल्ली माताजी के पास आयी थी। तो सूक्ष्म शरीर को जर्मनी के युद्ध-क्षेत्र से निकल कर पैरिस में माताजी के कमरे तक पहुँचने में कुछ भी समय नहीं लगा। सूक्ष्म शरीर इस गति से चल सकता है; वह दीवार को पार करके भी अपना व्यक्तित्व बनाये रख सकता है।

एक बार माताजी ने एक संगीतकार की बात बतलायी थी जिसने बरसों प्रयास करके अपने हाथों को पियानो बजाना सिखाया था। मृत्यु के बाद उसके सूक्ष्म हाथ ठोस बन गये और उसके अन्दर यह विद्या आ गयी। तो उसकी मृत्यु के बाद उसके हाथ, केवल हाथ, सूक्ष्म-भौतिक में बने रहे। इसमें मज़ेदार बात यह है कि पूरा व्यक्तित्व नहीं, केवल हाथ एक और आदमी के हाथों के साथ जुड़ गये जो अच्छा संगीतकार बनने की कोशिश कर रहा था। ज़रूरी यह है कि दूसरे संगीतकार में आह्वान करने की क्षमता हो, ऐसी क्षमता जिससे वह बजाने के समय ऐसी शक्ति को बुला

सके जो उसकी सहायता कर सके। इसका अर्थ यह है कि सूक्ष्म-भौतिक शक्तियों के साथ सम्पर्क बनाना सम्भव है और मृत व्यक्ति के एक भाग के साथ सम्बन्ध बना कर अपने जीवन को सुधारा भी जा सकता है।

मुझे एक और घटना याद आती है। एक महिला पॉण्डिचेरी आयी और मैं उसे माताजी के पास लेकर गया। जब वह प्रणाम करके वहाँ से चली गयी तो माताजी ने मुझसे कहा कि मैं इसके अन्दर एक पुरुष देखती हूँ। मैंने महिला से पूछा कि उसके पति का देहावसान कब हुआ तो उसने कहा, छह महीने पहले। मैंने पूछा, "क्या तुमको उनकी उपस्थिति का अनुभव होता है?" तो उसने कहा, "निरन्तर। उनकी मृत्यु के पहले मैं व्यापार के बारे में कुछ भी न जानती थी। मेरा बालक बहुत छोटा था इसलिए मैंने व्यापार की देखभाल शुरू की और मैं देखती हूँ कि मेरे पति सारे समय मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं।" यह बिलकुल सम्भव है। एक तरह के आकर्षण द्वारा सूक्ष्म शरीर को प्रसन्नता के वातावरण में रखा जा सकता है जहाँ वह अपनी परिपूर्णता पा ले। इस महिला के पति ने अनुभव किया होगा कि उसने अपना व्यापार यूँ ही छोड़ दिया, अब उसकी देखभाल कौन करेगा। चूँकि उस आदमी ने अपना व्यक्तित्व विकसित कर लिया था इसलिए उसने उसे विघटित नहीं होने दिया बल्कि मृत्यु के बाद अपनी पत्नी के साथ जोड़ दिया।

तो मृत्यु बहुत कुछ इस पर निर्भर होती है कि आदमी कैसा जीवन जीता है। हमें एक बात जाननी चाहिये कि मृत्यु के बाद कोई भी प्रगति नहीं हो सकती। जो भी प्रगति करनी है वह जीवित अवस्था में ही करनी होगी। हमारा चैत्य पुरुष उसे नये जीवन में ले जाता है और प्रतीक्षा करता है कि नया जीवन प्रगति करे।

अब मैं बहुत संक्षेप में पुनर्जन्म के बारे में आता हूँ। यह ऐसा विषय है जिसका हम सबको अध्ययन करना चाहिये। माताजी ने कहा है कि मृत्यु से पुनर्जन्म के बीच का समय साधारणतः छह मास से लेकर तीन वर्ष और कभी-कभी सौ वर्ष भी हो सकता है। आत्माएँ जितनी अधिक विकसित हों, उनके पुनर्जन्म में उतना ही अधिक समय लग सकता है। विकसित आत्मा अपने माता-पिता के बारे में, अपने वातावरण के बारे में निश्चय कर सकती है, यह भी ठीक कर सकती है कि उसे क्या करना है

और नया जन्म लेने से पहले अपना परिसर भी निश्चित कर सकती है।

एक दूसरी श्रेणी है जिसमें संयोग का तत्त्व होता है। जब कोई चैत्य पुरुष अपने नये जन्म के लिए पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करता है, अगर वह देखे कि वह जिस 'क' परिवार में प्रवेश कर रहा था उससे ज़्यादा विकसित माता-पिता का परिवार 'ख' है तो वह 'ख' परिवार में जा सकता है। अतः, पार्थिव स्तर के नज़दीक संयोग का तत्त्व भी हो सकता है। पुनर्जन्म के बारे में मज़ेदार बात यह है कि कुछ बच्चे बचपन से ही अपनी आत्मा के बारे में सचेतन होते हैं और मूर्खों की तरह हम सोचते हैं कि यह बच्चा है, यह क्या समझेगा! यह बहुत ग़लत बात है। एक दो वर्ष का बालक एक साठ वर्ष के वृद्ध की अपेक्षा अपनी आत्मा के बारे में ज़्यादा सचेतन हो सकता है, क्योंकि वह पहले बहुत से जन्म देख चुका है। मुझे याद है, एक सात वर्ष की लड़की आश्रम में भरती होना चाहती थी। मैंने उसकी बात माताजी से कही और कहा, "यह कैसे निर्णय कर सकती है?" माताजी ने कहा, "तीन वर्ष का बालक भी निर्णय कर सकता है। बालक का मन नहीं, उसकी आत्मा निश्चय करती है कि मेरा स्थान यहाँ है।"

पुनर्जन्म के बारे में आगे चलने से पहले मैं एक बात कहना चाहूँगा और वह है आत्मघात के बारे में। माताजी हमेशा आत्मघात के घोर विरोध में रही हैं। अगर तुम आत्मघात द्वारा अपना जीवन छोटा कर दो तो तुम्हें हमेशा ज़्यादा बुरी परिस्थितियों से शुरू करना होगा। तुम्हें अपने जीवन को छोटा न करना चाहिये, उसकी जगह उसे लम्बा बनाना चाहिये। जीवन लम्बा करने के बारे में एक और रोचक प्रसंग है जो मैं तुम लोगों को सुनाना चाहूँगा। जब हमारा कोई प्रिय व्यक्ति बहुत कष्ट में हो तो हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं, "हे भगवान्, यह ऐसी अवस्था भोगे इससे अच्छा है कि यह चल बसे।" लगभग पैंतीस वर्ष पहले मेरी एक चाची को लकवा मार गया था और बहुत कष्ट हो रहा था। मैंने माताजी से कहा कि अगर वे शरीर छोड़ दें तो ज़्यादा अच्छा हो। माताजी ने कहा, "नहीं, तुम्हें किसी के जीवन का एक श्वास भी कम न करना चाहिये क्योंकि अन्तिम श्वास तक भगवान् को पाने की सम्भावना रहती है।" तो हमें हमेशा याद रखना चाहिये कि अन्तिम श्वास तक भगवान् को पाने की सम्भावना रहती है।

(क्रमशः)

—नवजातजी

# प्रभु जब उतरते हैं

अवतारों के बारे में बात चल पड़ी तो ऋषिवर बोले कि श्रीअरविन्द की शिक्षा में किसी मान्यता को आवश्यक नहीं माना गया। कोई भी सिद्धान्त ऐसा नहीं है जिसे मानना सबके लिए आवश्यक या अनिवार्य हो क्योंकि केवल शब्दों में मान लेने का जीवन पर या चेतना पर कोई ख़ास प्रभाव नहीं पड़ता। इतनी दूर क्यों जायें, सूर्य निकला हुआ है, आप इस तथ्य को मानना चाहें मानें और न मानना चाहें न मानें, इससे सूर्य के लिए कोई फ़र्क नहीं पड़ता। आदमी के लिए भी मान्यता-मात्र का बहुत महत्त्व नहीं है। कोई सूर्य को चन्द्रमा कहे अथवा उसे तारा माने तो भाषा की दृष्टि से भले उपहासास्पद बन जाये, पर सचमुच उससे कुछ आता-जाता नहीं है।

आधुनिकता के रंग में रँगे मानव के लिए अवतारवाद को स्वीकार करना ज़रा भारी पड़ता है। आर्य समाज तथा उस जैसे अनेक सिद्धान्तों के अनुसार ईश्वर निर्गुण-निराकार हैं, वे सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, उनका मानव-शरीर में आना एकदम असम्भव है। इस्लाम के अनुसार तो यह कुफ़्र या शिर्क (अधर्म) की बात होगी।

यूँ तो हममें से हर एक भगवान् का अंश है। हममें से हर एक के अन्दर भागवत चेतना की एक चिनगारी है और उसके बिना हमारा अस्तित्व ही नहीं रह सकता, परन्तु साधारण मनुष्य में यह चिनगारी इतने परदों के पीछे छिपी होती है कि साधारण दृष्टि से देखा जाये तो उसका होना या न होना समान होता है। लेकिन अवतारों में यह बात नहीं होती। उनके अन्दर भागवत ज्योति सदा जगमगाती रहती है, अज्ञान का परदा उनके ऊपर उसी अंश में रह पाता है जिस अंश में वे उसे स्वीकार करें। जब कौशल्या भगवान् के ज्योतिर्मय रूप को न सह सकीं तो भगवान् छोटे बच्चे बन कर रोने लगे, जब अर्जुन विराट् रूप देख कर हतप्रभ हो गये, और ज़्यादा देखने की सामर्थ्य न रही तो भगवान् फिर से उनके सखा के रूप में आ गये। इस तरह अवतारों के इतिहास में हम यही देखते हैं कि वे अपना भागवत तत्त्व उतने ही अंश में दिखाते हैं जितना दिखाना ज़रूरी हो। बाक़ी हिस्सा प्रकृति के परदों से ढका रहता है। अवतार में भागवत चेतना का जो अंश आता है वह साधारण मनुष्य की चेतना से कहीं अधिक प्रकाशमान् और

शक्तिशाली होता है। साधारण मनुष्य में प्रकृति-भाग ही मुख्य होता है जब कि अवतार में ईश्वर-भाग प्रधान होता है। मनुष्य में प्रकृति-तत्त्व का राज्य होता है, ईश्वर-तत्त्व कहीं छिपा रहता है जब कि अवतार में ईश्वर-तत्त्व प्रकृति को अपने अधिकार में रखता है। *गीता* हमें बताती है कि मनुष्य में चेतना विकसित होती हुई ऊपर को भगवान् की ओर उठती है जब कि अवतार में स्वयं भगवान् मनुष्य के रूप में नीचे उतर कर मनुष्य की तरह लीला करते हैं।

भगवान् जब अवतार लेते हैं तो मनुष्य के रूप में, साथ-ही-साथ उसकी सब प्रकार की सीमाएँ, दुर्बलताएँ और त्रुटियाँ भी अपनाते हैं। वे यहाँ एक चमत्कारी पुरुष के रूप में नहीं आते, बल्कि यह दिखाने आते हैं कि हर प्रकार की त्रुटियों के होते हुए भी मनुष्य भागवत चेतना का पात्र बन सकता है। अवतार अगर चमत्कार से ही काम किया करें तो उनका आना बहुत ज़रूरी नहीं रह जाता। इस तरह तो भगवान् अवतार लिये बिना ही सब कुछ कर सकते हैं। अवतार मानव के विकास के लिए मार्ग दिखलाते और रास्ता साफ़ करते हैं। यह भी ज़रूरी नहीं है कि अवतार अपने काम हमेशा असाधारण रूप से करते रहें। ईसा का रोगियों को छू कर ठीक करना सच हो सकता है क्योंकि यह गुह्य शक्तियों के लिए मामूली काम है, परन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि अवतार हमेशा इसी तरह व्यवहार किया करें। भगवान् कृष्ण ने बाण खाकर शरीर-त्याग किया, रामकृष्ण परमहंस कैंसर से पीड़ित रहे, परन्तु इससे उनके अवतारी पुरुष होने में कोई अन्तर नहीं आता। अवतार मनुष्यजाति के भागवत नेता और भागवत मनुष्य के दृष्टान्त बन कर आते हैं और भागवत दृष्टि से देश-काल के अनुसार जैसा ज़रूरी हो वैसा व्यवहार करते हैं। बुद्ध ने रोग-शोक पर विजय पाने का एक उपाय ढूँढ़ा और ईसा ने दूसरा। इनके उदाहरण ऐसे होते हैं जिनका अनुसरण किया जा सके।

मानव को दुःख-दर्द से निकालना या राक्षसों का दलन ही अवतार का हेतु नहीं होता। उनका मुख्य कार्य होता है, विकास-मार्ग में एक नया दरवाज़ा खोलना। अवतार ने बाहरी रूप से क्या किया और क्या नहीं किया इसका विशेष मूल्य नहीं होता। अवतार किसी उच्चतर शक्ति की ओर से आते हैं और किसी विशेष भाव के प्रतीक होते हैं, इन्हीं दोनों चीज़ों का मूल्य

होता है। अवतार एक बार प्रकट होकर पृथ्वी पर एक प्रकार के स्पन्दन पैदा कर जाते हैं और ये स्पन्दन उनके शरीर छोड़ने के बाद भी बने रहते हैं और सभी मनुष्यों के ऊपर उठने के प्रयास में सहायता पहुँचाते हैं।

वन्दना ने पूछा, ऋषिवर, लेकिन *गीता* में तो कहा है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है तब-तब भगवान् धर्म को बढ़ाने और अधर्म को मिटाने के लिए जन्म लेते हैं। इसका क्या मतलब है?

ऋषिवर ने कहा, बात ठीक है। मैंने जान कर धर्म-अधर्म का नाम नहीं लिया था, क्योंकि इन शब्दों का अर्थ काफ़ी रूढ़ बन चुका है और इनका प्रयोग करने से काफ़ी ग़लतफ़हमी होने की सम्भावना रहती है। जब *गीता* कहती है कि भगवान् धर्म की स्थापना करने आते हैं तो इसका मतलब अमुक सिद्धान्तों, नियमों और कार्य-प्रणाली या विधि-निषेध का प्रचार करने वाले मत-मतान्तरों या सम्प्रदायों से नहीं होता। पृथ्वी पर हमारी अन्तरात्मा विकास के लिए आयी है। इसकी यात्रा चेतना के नीचे-से-नीचे स्तर या यूँ कहो, निश्चेतना से शुरू होती है, बीच में बहुत से पड़ाव होते हैं और चेतना के ऊँचे-से-ऊँचे स्तर तक पहुँचना इसका लक्ष्य होता है। इसमें केवल दो-चार, दस-पाँच मनुष्यों की बात नहीं होती, बल्कि सारे मानव-समाज की यात्रा होती है। हाँ, कोई दो क़दम आगे होता है, कोई चार क़दम पीछे। तो अवतार भी सारी मानवजाति को आगे बढ़ाने में सहायता देने के लिए आते हैं। वे सारी मानवजाति को इकट्ठा रखते हैं और उसके अन्दर भगवान् की ओर उठने की जो वृत्ति है उसकी सहायता करने के लिए आते हैं। यही मानव का धर्म है और सभी धर्म मूल रूप से इसी काम के लिए शुरू होते हैं। यह और बात है कि समय बीतने के साथ-साथ उनमें बहुत सारी ऊट-पटाँग चीज़ें घुस आती हैं और निर्मल जल का सोता गँदले पानी का नाला बन जाता है।

अभी तक सृष्टि का जो रूप है उसमें जब-जब ऊँचे उठने का प्रयास किया जाता है तब-तब विरोधी शक्तियाँ ऊपर उठने वाले को नीचे खींचने के लिए कूद पड़ती हैं। उनका काम ही होता है अशुभ और अन्धकार को बनाये रखना क्योंकि इनके बिना विरोधी तत्त्व पनप ही नहीं सकते। रावण, कंस से लेकर हिटलर तक अपने-अपने काल में इन शक्तियों के प्रतिनिधि और केन्द्र थे। अवतार उनका नाश करते हैं। उनके बाहरी कामों को देख

कर साधारण लोग अवतारों को पूजने लगते हैं। लेकिन उन्हें अपने से एकदम अलग मानना, ऐसा मानना जिसे दूर से पूजना ही ठीक है, जिसके पास पहुँचना असम्भव है—यह सचमुच अवतार का अपमान करना है। अवतार हमें यह दिखाते हैं कि हमारे अन्दर जो सनातन अवतार हमेशा मौजूद रहता है वह भी उसी की तरह अन्धकार के परदे चीर कर प्रकट हो सकता है। अवतार हमारे सामने असम्भव को सम्भव बनाने के मार्ग खोलता है। इसीलिए ईसा ने यह घोषणा की कि मैं और मेरे पिता एक हैं, इसीलिए श्रीकृष्ण ने कहा कि मानुषीं तनुमाश्रितम्—मानव शरीर में स्थित मैं और सब भूतों के परम सुहृद् परमेश्वर एक ही हैं।

—स्व. श्री रवीन्द्रजी

# यादों में ही सही, दिन हमारा है

एक अजीब से डर के साथ मैं अपने जीवन की कहानी लिखना शुरू कर रही हूँ। अपने बचपन के चारों ओर एक सुनहरे कुहासे की तरह लिपटे इस परदे को उठाने के लिए मेरे मन में एक झिझक रही है। आत्मकथा लिखना एक बहुत ही मुश्किल काम होता है। जब मैं अपने शुरुआती अनुभवों को खण्डों में बाँटने की कोशिश करती हूँ तो पाती हूँ कि बीते हुए कल को आज से जोड़ने वाले बरसों में वास्तविकता और कल्पना एक जैसी ही दिखायी पड़ती है। बचपन के अनुभवों को एक औरत अपने ही स्वप्न-चित्र में चित्रित करती है। मेरे जीवन के शुरुआती बरसों के कुछ अनुभव तो जीवन्त हैं, जब कि बाक़ी सब पर बन्दीगृह की-सी छायाएँ हैं। इसके अलावा बचपन की बहुत-सी ख़ुशियाँ और उतने ही दुःख अपनी मार्मिकता खो चुके हैं। और ऐसा भी हुआ कि बड़ी खोजों की उत्तेजना ने मेरी शुरुआती शिक्षा के बहुत ज़्यादा महत्त्व की कई घटनाओं को बिसरा दिया है। इस कहानी को उबाऊ न बनाते हुए मैं केवल उन्हीं घटनाओं को सामने रखना चाहूँगी जो मुझे बेहद ही रोचक और महत्त्वपूर्ण लगती हैं।

मेरा जन्म २७ जून, १८८० को उत्तरी अलाबामा के छोटे-से क़स्बे टुस्कुंबिया में हुआ। पिता के परिवार के लोग स्विट्ज़रलैंड के मूल निवासी कस्पर केलर के वंशज थे। वे लोग मैरीलैंड में आ बसे थे। मेरे एक पूर्वज ज़्यूरिख़

में मूक-बधिरों के पहले अध्यापक हुए और यह भी एकमात्र संजोग ही था कि उन्होंने मूक-बधिरों की शिक्षा-दीक्षा के बारे में एक किताब भी लिखी थी।

मैं अपनी उस बीमारी तक, जिसने मुझे देखने और सुनने से वञ्चित कर दिया था, एक छोटे-से घर में रही। इस घर में एक बड़ा चौकोर कमरा और एक छोटा-सा कमरा था। दक्षिण की तरफ़ रिहायशी ज़मीन के पास एक छोटा घर उपभवन के रूप में बनाने का रिवाज था। यह ख़ास अवसरों पर काम में लाया जाता था। गृहयुद्ध के बाद मेरे पिता ने ऐसा ही एक घर बनाया। यह लताओं, बेलदार गुलाबों तथा मधुमालती की लताओं से पूरी तरह ढँका हुआ था। बग़ीचे से वह एक कुञ्ज की तरह दिखता था। पीले गुलाबों और दक्षिणी स्मिलैक्स से ढका छोटा 'पोर्च' दिखायी नहीं देता था। यह 'हमिंग बर्ड्स' और मधुमक्खियों का पसन्दीदा बसेरा था। पुराने फ़ैशन का वह बग़ीचा मेरे बचपन का स्वर्ग था।

अपनी टीचर के आने के पहले के दिनों में भी, मैं अपने-आपको सख़्त चौकोर लकड़ी की घेरेबन्दी में ही महसूस किया करती थी और वहाँ मौजूद गन्ध ही मेरी 'गाइड' हुआ करती थी। यहीं मैंने सबसे पहले नीलपुष्प और लिली के फूलों को खोजा था। ग़ुस्से के आवेश के बाद आराम करने और ग़ुस्से से लाल अपने चेहरे को छिपाने के लिए मैं इन्हीं ठण्डी पत्तियों और घास में पहुँच जाती थी। फूलों की उस बगिया में अपने ग़ुस्से को शान्त करने की भी अपनी ख़ुशी हुआ करती थी। उस बग़ीचे में एक जगह से दूसरी जगह तब तक घूमना, जब तक कि अचानक वह सुन्दर बेल न आ जाये। बेल को मैं उसकी पत्तियों और ख़ुशबू से ही पहचानती थी और वहीं मैंने जाना कि यह वही बेल थी जिसने बग़ीचे के अन्तिम छोर पर बने उस टूटे-फूटे 'समर हाउस' को ढँक रखा था। यहाँ क्लेमॅटिस नाम की लताएँ फैली थीं, लटकते हुए जैसमिन के फूल थे और मिठास लिये कुछ विरल सुन्दर फूल थे। ये फूल बटरफ़्लाई लिली कहलाते हैं क्योंकि इनकी कोमल पंखुड़ियाँ तितलियों के पंखों-जैसी होती हैं। लेकिन गुलाब—उनका तो कहना ही क्या! मैंने उत्तर के 'ग्रीन हाउस' में ऐसे दिलख़ुश गुलाब नहीं देखे जैसे कि मेरे दक्षिण घर में थे। वे लम्बे बंदनवार की तरह हमारे 'पोर्च' से लटका करते थे। पूरी हवा को अपनी ख़ुशबू से सराबोर कर देते थे, मिट्टी की ख़ुशबू से वे अछूते थे और अलसुबह ओस में धुले इतने

कोमल और पवित्र लगते थे कि मैं यह सोचने से अपने-आपको रोक नहीं पाती थी कि ईश्वर के बग़ीचे के रंग-बिरंगे ख़ूबसूरत लिली के फूलों से ये किस तरह से अलग होंगे!

मेरे जीवन की शुरुआत बहुत ही सादगी-भरे आम जीवन की तरह ही थी। मैं इस संसार में आयी, मैंने देखा और मैंने क़िले फ़तह किये। जैसे कि परिवार के पहले बच्चे का कोई भी चलताऊ नाम नहीं रखना चाहता था और इस बात को लेकर परिवार के सब लोग स्पष्ट थे। मेरे पिता ने मिल्ड्रेड कैंपबेल का नाम सुझाया, जो कि उनके बेहद सम्मानित पूर्वज थे। उसके बाद उन्होंने बातचीत में और आगे हिस्सा लेने से मना कर दिया। मेरी माँ ने यह कह कर इस समस्या का हल सुझाया कि वे चाहती हैं कि मैं उनकी माँ के विवाह से पहले वाले नाम हेलेन एवरेट से जानी जाऊँ। लेकिन मुझे चर्च ले जाने की उत्सुकता में मेरे पिता इस नाम को रास्ते में ही भूल बैठे। यह सहज ही था क्योंकि उन्होंने तो इस क़िस्से में भाग लेने से इनकार ही कर दिया था। जब पादरी ने उनसे नाम पूछा तो उन्हें केवल इतना ही ध्यान आया कि यह तय हुआ था कि मैं अपनी नानी के नाम से जानी जाऊँगी और उन्होंने वह नाम हेलेन एडम्स बताया।

मुझे बताया गया कि जब मैं लम्बी पोशाकें पहना करती थी तब भी मैंने उत्सुकता के, आत्मनिश्चय के कई संकेत दिये। हर वह चीज़, जो मैं दूसरे लोगों को करते देखा करती, मैं उसी की नक़ल करने की ज़िद करती। छः महीने की उम्र में मैं 'आप कैसे हैं' बोल सकती थी और एक दिन मैंने आसानी से चाय, चाय, चाय कह कर सभी का ध्यान अपनी ओर खींचा। अपनी बीमारी के बाद भी मुझे उन शब्दों में से एक शब्द याद था, जो शुरुआती महीनों में सीखे थे, वह शब्द था 'वॉटर' और अपनी आवाज़ खो जाने के बाद भी मैंने उस शब्द के लिए कुछ ध्वनि बनाना जारी रखा। मैंने वा-वा की आवाज़ निकालनी तभी बन्द की, जब मैंने उस शब्द को बोलना सीखा।

मुझे बताया गया कि जब मैं एक बरस की थी तभी मैंने चलना शुरू कर दिया था। मेरी माँ ने मुझे नहाने के टब से बाहर निकाला ही था और वे मुझे गोद में पकड़े हुई थीं, तभी मैं अचानक धूप में समतल फ़र्श पर नाचती हुई पत्तियों की फड़फड़ाती छाया की ओर आकर्षित हुई। मैं माँ

की गोद से उतरी और लगभग पत्तियों की ओर दौड़ ही पड़ी। आवेश के ख़त्म होते ही, मैं गिरी और चिल्लायी कि माँ मुझे अपनी बाँहों में उठा लो।

ख़ुशी के ये दिन ज़्यादा नहीं चले। गाने वाली छोटी चिड़िया रॉबेन और मॉकिंग बर्ड के गीत के साथ एक संगीतमय छोटा-सा बसन्त, फलों और गुलाबों से भरपूर एक गर्मी और सुनहरा और किरमिज़ी एक शरद बीत गया। और ये सब एक उत्सुक और ख़ुश बच्चे के पैरों में कुछ उपहार छोड़ गये। फिर फ़रवरी के नीरस महीने में वह बीमारी आयी, जिसने मेरी आँखें और कान बन्द कर दिये और मुझे एक नवजात बच्चे जैसी बेसुधी में धकेल दिया। वे इसे पेट और मस्तिष्क का तेज़ संकुचन कहते हैं। डॉक्टर यह मान कर चल रहा था कि मैं जी नहीं सकूँगी। एक अलसुबह उसी तरह अचानक और रहस्यमय तरीक़े से मेरा बुख़ार उतर गया, जैसे कि वह आया था। उस समय मेरे परिवार में बहुत ख़ुशनुमा माहौल था, लेकिन कोई भी, यहाँ तक कि डॉक्टर भी नहीं जानता था कि मैं अब कभी भी दोबारा देख-सुन नहीं सकूँगी।

मैं कल्पना करती हूँ कि मैं अब भी अपनी उस बीमारी को लेकर विभ्रम की स्थिति में हूँ। विशेष रूप से मुझे मेरी माँ की वह सहृदयता याद है, जिससे वे मेरी खीझ और दर्दभरी बेहोशी में मुझे ख़ुश करने की कोशिश करती थीं। मेरी वह तड़पन और घबराहट, जिसके साथ मैं अशान्त और आधी नींद से उठी और मैंने अपनी रूखी तथा गर्म आँखों को उस रोशनी से परे, जो मुझे कभी बहुत प्रिय लगती थी, एक दीवार की ओर मोड़ा, जो मुझे दिन-ब-दिन धुँधली दिखने लगी। लेकिन इन क्षणिक यादों के अलावा यदि सचमुच कुछ यादें हैं तो वे बहुत अवास्तविक, बिलकुल एक बुरे सपने की तरह हैं। धीरे-धीरे मैं उस शान्त और अँधियारे की आदी हो गयी जो मुझे घेरे हुए था। तभी मेरी टीचर आयीं, जिन्होंने मेरी आत्मा को अनन्त आकाश दिया। तब मैं भूल गयी कि मेरा जीवन इस अँधेरेपन से कुछ अलग था। लेकिन अपने जीवन के पहले उन्नीस महीनों में ही मैंने बड़े हरे-भरे मैदानों, चमकीले आकाश, पेड़ों और फूलों की झलक पा ली थी। इन्हें आने वाला अन्धकार मिटा न सका। अगर हम एक बार देख चुके हैं तो दिन हमारा है और उसकी हर चीज़ हमारी है, चाहे यादों में ही सही।

'मैत्री' से साभार

—हेलेन केलर

# भगवान् से मिलने का कार्यक्रम कभी बनाया?

यह रही उस छोटे बच्चे की कहानी जो भगवान् से मिलना चाहता था। नील था तो मुश्किल से छह साल का, लेकिन उसकी योजनाएँ बड़ों के जैसी हुआ करती थीं; क्या आप लोगों में से किसी ने कभी भगवान् से मिलने की कोशिश की है? नील ने तो उनसे मिलने का कार्यक्रम ही बना लिया। घर, बाहर बात-बात पर लोग भगवान् की दुहाई दिया करते थे, माँ ने तो उससे कई बार कहा भी था कि भगवान् को ढूँढ़ने कोई स्वर्ग तक थोड़े ही जाना होता है, वे हमारे बहुत पास होते हैं, कहीं भी मिल सकते हैं। एक बार तो यह भी कहा था उन्होंने कि सबके अन्दर भगवान् रहते हैं, ज़रा अन्दर झाँकों, मिल जायेंगे। लेकिन नील को यह विचार बहुत पसन्द न आया; कहाँ झाँके, कैसे झाँके? तो एक दिन उसने उन्हें अपने मोहल्ले में ही ढूँढ़ने की ठान ली। गरमी की छुट्टियों का पहला दिन था। 'शुभस्य शीघ्रम्'—उसी दिन नील ने अपना छोटा सफ़री थैला उठाया, कुछ मीठी डबलरोटियाँ लीं, सूखा मेवा रखा और साथ-साथ कुछ फल भी डाल लिये—अगर मोहल्ले से कुछ दूर निकलना पड़े तो? सोच कर नील ने खाना-पीना संग रख लिया।

माँ को उसने अपनी यात्रा की बात पहले बता दी थी। जूते-मोज़े पहन, टोपी लगा, अपना थैला कन्धे पर टाँग, वह माँ के पास आया तो वे उसे निहराती ही रह गयीं। "माँ, मैं ज़रा भगवान् से मिल कर आया। सवेरे-सवेरे तो कहीं आस-पास ही मिल जायेंगे।"

माँ ने उसे गोदी में उठा कर चूमते हुए कहा, "वाह मेरे छोटे कोलम्बस! लेकिन कहीं दूर न निकल जाना, ठीक है?"

नील ने हामी भर ली, "ठीक है माँ, आज नहीं मिले तो कल तुम्हारे साथ दूर जाकर ढूँढ़ूँगा।"

माँ ने बेटे की बलैयाँ लीं और वह नन्हा अन्वेषक अपने अभियान पर निकल पड़ा।

दस मिनट की पैदल यात्रा तय कर वह अपने घर से तीन सड़क दूर पार्क के सामने आ पहुँचा। नील को भूख और प्यास सताने लगीं। "कुछ खा-पीकर आगे बढ़ूँगा।" सोच कर वह पास ही की बेंच पर सुस्ताने के

लिए बैठ गया, थैला खोला, डबलरोटी निकाल कर पहला गस्सा लेने ही वाला था कि उसकी नज़र सामने की बेंच पर बैठी ग़रीब स्त्री पर चली गयी। दोनों एक-दूसरे की तरफ़ देख कर अनायास मुस्कुरा उठे। नील अपना सामान उठा उसी के पास जाकर बैठ गया, उसे डबलरोटी दी, स्त्री ने कृतज्ञता-भरी आँखों से ले ली और ऐसी सुन्दर मुस्कान बिखेरी कि नील मुग्ध हो गया। दोनों चुपचाप खाते रहे। डबलरोटी के बाद सूखा मेवा, फल इत्यादि बारी-बारी से निकले और बालक और वृद्धा दोनों ही आत्म-सन्तोष से भरे हुए धीमे-धीमे खाते रहे। दोनों के बीच बातचीत नहीं के बराबर हुई, केवल मुस्कानों के दौर ही चलते रहे। धीरे-धीरे करके सारा खाना खतम हो गया। भरे पेट का सन्तोष दोनों के चेहरों पर खिल उठा। दोपहर का सूरज चढ़ रहा था। नील को अचानक महसूस हुआ कि माँ को न देखे काफ़ी समय गुज़र गया है, उसे माँ की याद सताने लगी। वह उठा, वृद्धा भी साथ-साथ उठी, दोनों ने अभिवादन किया और नील घर की ओर बढ़ चला। चार क़दम चलने के बाद पलट कर उसने वृद्धा को देखा, और उसके चेहरे पर छायी अपूर्व मुस्तान से नील गद्‌गद हो उठा, दौड़ कर वृद्धा से जा लिपटा और दोनों चुपचाप कुछ क्षणों तक उसी तरह आलिंगनबद्ध रहे। न नील को कुछ कहने की ज़रूरत जान पड़ी, न वृद्धा को, बस दोनों की आँखों की चमक ही आपस में बोली थी।

ख़ुशी से झूमता नील घर पहुँचा। सभी उसे इतना ख़ुश देख प्रसन्न हो उठे। माँ ने पूछा, "वाह बेटे कोलम्बस, कुछ हाथ लग गया क्या? चुम्हारा खिला हुआ चेहरा तो इस बात की गवाही दे रहा है...।"

"अरे सुनो तो माँ, मुझे भगवान् मिल गये। अभी-अभी मैं उन्हीं के साथ ही नाश्ता करके आ रहा हूँ। वे एक बूढ़ी, ग़रीब स्त्री बन कर मुझसे मिलने, पार्क में आकर बैठ गये थे। तुम्हीं तो कहा करती हो न कि वे कोई भी रूप ले सकते हैं।" नील बोलता गया, "अब पूछोगी, कैसे पहचाना मैंने उन्हें? पहचाना उनकी मुस्कान से—माँ, हम आपस में कुछ बोले को नहीं लेकिन वे बार-बार मुझे देख मुस्कुरा रही थीं, जब-जब मुस्कुरातीं, चारों तरफ़ एक रौशनी फैलती जाती...। माँ, भगवान् से ही मिला न मैं?" बच्चे ने माँ से अपनी बात की पुष्टि करवानी चाही। माँ ने उसे अपने सीने से लगा कर कहा, "बिलकुल बेटा, उन्हीं से मिल कर, उन्हीं के साथ नाश्ता

करके आये हो तुम।" फिर धीरे से उसके कान में फुसफुसायीं—"बेटे, अब राज़ की यह बात गाँठ बाँध लो कि भगवान् अपनी इस दुनिया से इतना प्यार करते हैं कि सचमुच वे यहीं बस गये हैं और उन्हें देखने और अनुभव करने के लिए बस हमें अपनी इन आँखों को सजग रखना और अपने हृदय को पूरी तरह से खुला रखना होता है।"

उधर वह वृद्धा जब अपने घर पहुँची तो उसका बेटा उसे ठगा-सा खड़ा रह गया—"माँ, क्या बात है, हमेशा परेशानी और दुःख से लटका तुम्हारा चेहरा आज अपूर्व कान्ति और शान्ति से दमक कैसे रहा है? कितनी सुन्दर लग रही हो आज तुम।"

वृद्धा अपने पुत्र का हाथ थाम ख़ुशी से चहक उठी—"पता है बेटे, आज सचमुच मैं भगवान् के साथ नाश्ता करके आ रही हूँ। जीवन में ऐसी ख़ुशी मुझे पहली बार मिली।" बेटे की फटी-फटी आँखें प्रश्नचिह्न बन गयीं। माँ ने अपनी जारी रखी, "पार्क की बेंच पर मेरे साथ आकर बैठ गया था वह, हाँ, मैंने जितना सोचा था इससे कहीं ज़्यादा छोटा निकला ईश्वर। कितनी सरलता से बच्चे के रूप में आया, मेरे पास बैठ कर, नाश्ता कर चला गया!"

पु. अगस्त २००६ से —वन्दना

हम कभी अकेले नहीं होते :
'भगवान्' हमेशा हमारे साथ होते हैं।
यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि
हम 'उनकी उपस्थिति' के बारे में सचेतन हों।

आशीर्वाद।

१ जनवरी १९७३ **श्रीमाँ**

श्रद्धा, अधिक श्रद्धा।

श्रद्धा, अपनी सम्भावनाओं में,

श्रद्धा 'शक्ति' में जो परदे के पीछे से कार्य कर रही है,

श्रद्धा कार्य में जिसे करना है और

श्रद्धा प्रस्तुत पथ-प्रदर्शन में।

**श्रीअरविन्द**

*शुभ कामनाओं सहित*

**श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,**
**जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)**
www.aurosocietyrajasthan.org

**SRI AUROBINDO SOCIETY**
**Notice for the Annual General Meeting**

The Annual General Meeting of the members of Sri Aurobindo Society will be held on Saturday, the 23rd September 2023, at 4.00 p.m. at its registered office, Sri Aurobindo Bhavan, 8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071, to transact the following business:

1. To confirm the minutes of the last Annual General Meeting held on 24th September 2022.
2. To consider and approve the audited Balance Sheet and Income & Expenditure Account of the Society for the year ended 31.03.2023.
3. To consider and adopt the Executive Committee's Annual Report of Activities for the year 2022–2023.
4. Formation of Executive Committee.
5. To appoint an auditor for the Society for the year 2023-2024.
6. To consider any other matter with the permission of the chair.

Sd/-
15.06.2023 (Pradeep Narang)
Puducherry Chairman

*Note: The members are entitled to appoint proxy. Proxies must be deposited at the Registered Office of the Society, No. 8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071, during office hours, in advance but not less than 48 hours before the time of the meeting. The proxy should be a member of the Society. Proxy form is printed below.*

✂ ..... ✂ ..... ✂ ..... ✂

**PROXY**

SRI AUROBINDO SOCIETY,
Regd. Office: 8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071.

I, ……. being a member of Sri Aurobindo Society, having membership No. …….. valid upto ……... do hereby appoint …… having Society's membership No. …… valid upto …… as my proxy in my absence to attend and vote for me and on my behalf at the Annual General Meeting of the Society, to be held on Saturday, the 23rd September 2023, at 4.00 p.m. and at any adjournment thereof.

In witness whereof, I have set my hand this
…….... day of .....……. 2023.

Revenue Stamp

(Signature of the member across the stamp)

*With best compliments from:*

**AURO MIRRA**
**INTERNATIONAL SCHOOL,**

110, Gangadhar Chetty Road,
Ulsoor, Bangalore-560042
Email:accounts@auroschoolsulsoor.org
www.auroschoolsulsoor.org

**AURO MIRRA CENTRE OF EDUCATION**
**An Integral School,**
SSST Nagar, Patiala
E-mail: auromirrapta@gmail.com

**SRI AUROBINDO**
**INTERNATIONAL SCHOOL**
(A Senior Secondary School)
Sri Aurobindo Marg,
Rose Garden-Bus Stand, Patiala
E-mail: auroschoolpta@gmail.com

Date of Publication: 1st August 2023
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70